अध्याय - 2

तत्कालीन परिस्थितिर्या

- राजकालीन एवम् राष्ट्रीय
- सामाजिक
- सांस्कृतिक

  (ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, ब्रह्म विद्या समाज, रामकृष्ण मिशन, लोकमान्य बालगंगाघर तिलक, महायोगी अरविंद, रविन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांघी आदि क प्रभाव)
- साहित्यिक

आज हमारा भारत देश 21 वीं शताब्दी की ओर अग्रसर हो रहा है । स्वतंत्रता प्राप्ति के 50 वर्ष पूर्ण होने के बाद आज भारत का जो रुप देख रहे है उसकी नींव 19 वीं शताब्दी की है । 19 वीं शताब्दी का संघर्ष का रुप - भारत और ब्रिटन के बीच या भारतीय और अंग्रेजों के बीच का संघर्ष है । इस विशाल भारत के नवनिर्माण में समपुरुष और महात्मा गाँधीजी का प्रभाव व्यापक रुप से भारतीयों में है ।

आज भारत हर तरह से वैज्ञानिक साधनों से परिपूर्ण है , वह हर क्षेत्रमें आगे तरक्की कर रहा है ; और भारतीयों की विचारधारा उन्मुक्त होकर सामने आ रही है पर इस भारतीयों की विचारधारा में नवीनता एवम् उन्मूकत अंग्रेजों के आगमन के कारण आई है । वैसे यह राजनीतिक चेतना का सूत्रपात तो 1885 ई. के आसपास हुआ था, परन्तु राष्ट्रीय जागरण 20 शताब्दी में आया । अंग्रेजो अपने साथ-साथ उनकी भाषा, सभ्यता और संस्कृति लेकर आए जिससे भारतीय अंग्रेजों के प्रभुत्व से प्रभावित हुए। हिन्दुओँ के विचारो में भी उन्मुक्ता आई, उँनमें सामाजिक समता, धार्मिक समन्वय और राष्ट्रीय चेतना की भावना पनपने लगी । इस नवीन चेतनाने समाज के सभी पक्षों को (नैतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक) स्पर्श किया । एक के बाद एक भारत में कई जातियाँ आई और उन्होंने अपना शासन किया-पर अंग्रेज आए और पूरे भारत को अपने अंकुश में ले लिया । और वे इस देश के शासक बन बैठे।

राजनीतिक एवम् राष्ट्रीय परिस्थितियाँ

भारत में अंग्रेज राज्य की स्थापना ईसा की 19 वीं शताब्दी का मध्यकाल है । ये समय ब्रिटिश-राज्य का सम्पूर्ण स्थापना का समय है । इस. 1818 में इस्ट इन्डिया कंपनी की स्थापना हुई । सन् 1707 इ. औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल-साम्राज्य का अधःपतन और विनाश तीव्रगति से होने लगा था तथा मुगल-साम्राज्य के इस पतन-काल में भारत की निर्बल आंतरिक राजनीतिक परिस्थिति का पूरी तरह लाभ उठाया और उन्होंने ''भारत में अपनी शक्ति संगठित करने की विविध योजनाएँ कार्यान्वित कर दी थी तथा कालान्तर में हमारे द्वारा, हमारी संपत्ति तथा हमारी सेवाओं के बल पर वे इस देश के शासक बन बैठे और लंबे अर्से तक शासन करते रहे ।''(1)

सन् 1818 में पेशवाई को खत्म करके भारत में अंग्रेजों का सार्वभौमत्व माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिस्टन ने स्थापित किया । सन् 1819 से 1827 तक बम्बई के गर्वनर माऊन्ट स्टुअर्ट एल्फिस्टन तथा मद्रास के गर्वनर सर-टामसमनरो के शासन काल के दरम्यान में अंग्रेजी शासन उर्ध्वगति और अधोगति दोनों तरफ जा रही थी । भारत देश का विचारक वर्ग अंग्रेजी शासन को जैसे-जैसे समझता गया वैसे-वैसे उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया की भावना भी अधिकाधिक द्दढ़ होती गई । इस परिवर्तित दशा से अंग्रेज शासक को शंकाए होने लगीं थी और इसीलिए मई 1819 में सर टामस मनरो द्वारा एल्फिस्टन

सरजान माल्कम तथा मेकेन्टारा को लिखित दो महत्वपूर्ण बातें बताई थी कि ''आज या कल सारा देश हम अपना बनालें यही बहुधा वांछनीय है । हमारा भारतीय साम्राज्य अधिक समय तक नहीं टिकेगा । यह मत सहज एक कुशंका नहीं बल्कि युक्ति यूक्त है । इस साम्राज्य का अंत किस प्रकार होगा यह समझना बड़ा मुश्किल है ।''(2) सन 1833 ई. राजाराममोहनाय के कीर्तिकाल में अंग्रेजीशासन पूर्ण रुप से स्थापित हो चूका था, परन्तु इस शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी आरंभ हो चूकी थी । राष्ट्रीयजीवन राजाराममोहनराय के समय से ही विविध रुपों से परिपक्व हो रहा था । इसके विरोध में अनेक आंदोलन हो रहे थे, जिसका व्यापक स्वरुप गांधीयुग में ही प्रकट हुआ । और इन आंदोलनों का नेतृत्व गांधीजीने संभाला । इस संबंध में श्री मगनभाई देसाई का कथन है ''गांधीजी का समय सन् 1869 से 1948 तक का था । इस काल में अंग्रेजी राज्य पूरा जमकर फिर उखड़ने लगा । धूल पर लिपाई की पपड़ी ऊपर-नीचे होती है, वैसी कुछ बात हुई । इस प्रकार यह काल अंग्रेजी राज्य का उत्थापना युग था ।''(3)

अंग्रेजोने जब तक भारत में अपना शासन किया तब तक वे लोग यहीं कहते रहे कि हम इस देश में सभ्यता का विकास कर रहे है उस राज्य-व्यवस्था के विरुद्ध सबसे पहली क्रांति सन् 1857 में भारत-स्वातंत्र्य-आंदोलन में दिखाई दी । यह घटना इतिहास प्रसिद्ध है । सन् 1857 इ. का प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम इस युग की एक विशेष महत्वपूर्ण घटना है । भारतीयों ने अनुभव किया की अपने ही सिपाहीयों और सेना के बल पर अंग्रेजी हमारे देश पर शासन कर रहे हैं । सन् 1757 में अंग्रेजोंने बंगाल पर अधिकार कर लिया था, उसके बाद सिन्ध, पंजाब, अवध आदि की स्वाधीनता को छीन ली । और भारतीयों एवं राजा-महाराजाओं पर कई प्रकार के अत्याचार होने लगे । नाना साहब का पेन्शन बंध किया, सिविल सर्विस परिक्षाओं में भारतीयों के विरुद्ध अनुचित्त व्यवहार होने लगा । इस तरह उनका राज्य क्रमशः भारत में फैलता गया और अपने ढंग की शासन-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था कायम की । जिससे जनता में असंतोष की ज्वाला भभक उठी । वेलेसली देशी राजाओं को फौजी मदद देने का बहाना बनाकर उन्हें अपने अधीन करता चला गया । उसके पश्चात् लार्ड डेलहाऊसी ने भी उसी की नीति का अनुकरण किया और उसकी लैप्स की नीति के कारण कई देशी रियासतें-जैसे सतारा, झांसी, नागपुर, जैतपुर, उदयपुर आदि अंग्रेजी राज्य में मिला दी । छोटे-छोटे रजवाड़ो को समाप्त किया । परिणाम स्वरुप देशी राजाओं तथा नवाबों में असंतोष की भावना जागृत हुई । विचारशील हिन्दुस्तानी इस विदेशी राजनीति को उतार फेंकने लिए एक प्रबल और गुप्त आंदोलन का प्रारंभ किया । इस आंदोलन के बारे में पट्टाभिसीतारामैया ने लिखा है - ''निःसन्देह 1857 का विद्रोह अंग्रेजी सत्ता को मिटाने का महान् उद्योग था, जिसका प्रभाव कालान्तर में स्पष्ट हुआ । इस स्वतंत्रता-संग्राम की पराजय के बाद ही भारत अंग्रेजी साम्राज्य की बेड़ियों में जकड़ गया । अंग्रेजों ने प्रांतीयता, सांप्रदायिकता

एवं वर्ग-भेद के आधार पर सेनाओं का संगठन किया। मनसबदारियां बांटी गई, छोटे-छोटे सामंतो को जनता के मनोबल को तोड़ने के लिए प्रोत्साहित कर उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना को कुचलने का पूरा प्रयास किया ।''[4] लेकिन सन् 1857 ई. के इस आंदोलन को पूरी तरह सफलता प्राप्त नहीं हुई । सरकारने उसको कुचल दिया । परन्तु इस विग्रह से एक बात स्पष्ट हो चुकी थी कि भारतीय जनता में अपने देश प्रति प्रेम, श्रद्धा एवं स्वाधीनता की भावना बलवती हो चूकी है । इस आंदोलन के बाद से भारतीयों में आत्म विश्वास की भावना प्रबल हुई ।''स्वतंत्रता संग्राम के इस महायज्ञ की ज्वालाओं के फल स्वरुप भारतीयों के राष्ट्रीय जीवन में आशा और आत्मविश्वास की वह ज्योति प्रकट हुई जिसने लगभग 60 वर्षो तक निरन्तर प्रजवलित रहकर देश को स्वतंत्रता दिलाने में महत्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान की ।''[5] 9 मई 1856 ई. को सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला प्रजवलित हो गई। अंग्रेजी सेना के दमन और राजा-महाराजाओं के विश्वासघात से स्वाधीनता का प्रथम संग्राम असफल हुआ। जिसमें नाना साहब, बाँदा का नवाब, अहमदशाह, तात्या तोपे, झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई आदि अनेक वीर सेनानी काम आए। इस आंदोलन के बाद सन् 1858 इ. से भारत में महारानी विक्टोरिया का शासन-व्यवस्था का युग प्रारंभ होता है । इस युग में कुछ-कुछ अशांति और अविश्वास की भावना कम हुई क्योंकि अनेक प्रकार की सांत्वनामयी घोषणाएँ हुई थीं । महारानी ने कहा कि ''महारानी की प्रजा के लोग चाहे वे किसी भी जाति, रंग व धर्म के हों । बिना किसी रोकटोक एवं भेद-भाव के सरकारी नौकरियों में उनकी शिक्षा, योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार भर्ती किए जायेंगे ।''[6] परन्तु इन शब्दों का कभी भी पालन ही नहीं हुआ । बल्कि भारतीयों की परिस्थिति दिन ब दिन अधिक दयनीय हो रही थी। सन् 1878 इ. में ''भारतीय शस्त्र एक्ट'' नामक एक्ट बनाया गया । अर्थात भारतीय अंग्रेजो की आज्ञा के बिना शस्त्र नहीं रख सकते । इस तरह सरकार के विरोध कानून, पुलीस का दमन और अत्याचार, लार्ड लिटन क़ा प्रतिगामी शासन, खर्ची का दरबार, कपास के यातायात कर का उठाया जाना, वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट, अफ़गान युद्ध आदि बातों ने उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी शासन का दमन और भ्रष्टाचार से भारतीय जनता बहुत त्रस्त हो गई थी और उनमें विद्रोह और अशांति की भावना प्रबल हो रही थी । जनता की इस प्रवृत्तियों को रोकने के लिए एलेन ओस्टेवियन ह्यूस ने सोचा कि ''अगर हिन्दुस्तानियों से उनकी शिकायतें सुनने की व्यवस्था हो सके तो इससे अंग्रेजी शासन का भी हित हो सकता है और हिन्दुस्तानीयों का बढ़ता हुआ असंतोष भी दूर हो सकता है ।''[7] उस समय देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विचारधाराओं को संतुष्ट करने के लिए एक ऐसी संस्था अनिवार्य थी जो ''राज्य और जनता में पारस्परिक स्नेह संबंध स्थापित करने के लिए शासकों को उनकी शासन संबंधी त्रुटियां बताने के लिए तथा शासक और शासित के मध्य उत्पन्न वैमनस्य को दूर करने के लिए

1885 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की स्थापना हुई ।''[8] अन्त में जनता की बढ़ती हुई अशान्ति और विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए मिस्टर ह्यूमने कुछ भारतीयों के सहयोग से 27 दिसम्बर सन|1885 ई में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना की जिसमें एक ओर ह्यूम बेडर बर्न और दूसरी ओर दादाभाई, रानड़े, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बोस और तिलक मुख्य थे । सहयोग और साम्राज्य निष्ठा की नींव पर वैद्य आंदोलन के आधार पर कांग्रेस कायम हुई ।[9]

प्रारंभ में कांग्रेस मध्यम श्रेणी के लोगों की संस्था थी, ''इसका उद्देश्य पहले तो भारतीयों में प्रशासकीय कार्यो में सहयोग देने की भावना का विकास करना था । परन्तु जब इसमें बाल गंगाधर तिलक जैसे व्यक्ति आए तब यह स्वाधीनता प्राप्त करनेवाली संस्था के रुप में बदल गई ।''[10] धीरे-धीरे मतभेद होने से उसमें दो दल-गरमदल और नरमदल बन गए। लोकमान्य तिलक, लाला लज़पतराय तथा विपिनचन्द्र पाल गरमदल के प्रमुख नेता थे । भारतीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में ईसाई अध्यक्ष उमेशचन्द्र बेनर्जी के नेतृत्व में हुआ दूसरा अधिवेशन कलकत्ते में पारसी नेता दादाभाई नौरोजी के नेतृत्व में हुआ और तीसरा अधिवेशन अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी जो मुसलमान थे उनके नेतृत्व में हुआ । इस एकता को देखकर नौकरशाही के मन में कँाग्रेस का द्वेष और डर पैदा होने लगा । इसी कारण चौथे अधिवेशन के समय इलाहाबाद में मण्डप के लिए भी जगह न मिल सकी और इसके बाद से भारतीयों और अंग्रेजों में विरोध तीव्र होता गया ।[11] राजनीतिक चेतना का यह स्फुरण समाज के उच्च स्तर में ही था। लेकिन क्रमशः जन-असंतोष उभरने लगा । जनमानस के स्वर में दृढ़ता आई । राजभक्ति से असंतोष उत्पन्न होने पर ही शुद्ध राष्ट्रभक्ति का पार्दुभाव हुआ और इसी से राष्ट्रवाद का विकास ।''[12]

अपने निर्माण के कुछ काल के बाद ही कांग्रेस का रुप अंग्रेजो को अरुचिकर और घृणास्पद बन गया क्योंकि वह क्रमशः भारतीय राष्ट्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने लगीं। सरकार कांग्रेस के अधिवेशनों में बाधा डालने लगी और सरकारी नौकर कोंग्रेस कमेटीयों में भाग नहीं ले सकते थे । विश्व-विद्यालयों पर सरकारी नियंत्रण लादे गए । बंगाल का विभाजन किया गया और भारतीयों को वांछित किया जाने लगा । सारे शहेर में क्रांति की एक लहर फैल गई । कांग्रेस के इतिहास को डा.सीतारामैया के शब्दो में - 1906 के बाद जो नवीन जागृति और नया तेज देश में इस छोर से उस छोर तक फैल गया था, उसका मूल कारण बंगभंग था ।[13] बंग-भंग के बारे में रोनल्डरों ने लिखा है कि उस समय के बंगाल में बिहार और उड़ीसा भी संमिलित थे, अतः उसका विभाजन तो होना चाहिए था परन्तु जिस रुप में किया गया वह बिल्कूल मनमाना था । और इसका उद्देश्य लोर्ड रोनल्डरों के शब्दों में बंगाली राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई द्रढ़ता पर आक्रमण करना था । बंगाल की घटना से एक नये आंदोलन ने

जन्म लिया जो बंग-भंग के नाम से प्रसिद्ध है । इस सांधातिक प्रहार के प्रतिरोध में जनताने विराटशक्ति का रुप धारण किया ।[114] इस राष्ट्रीय जागृतिने भारतीय साहित्य की भूमि में भी राष्ट्रीय भावना तथा स्वाभिमान का बीजारोपण किया । इसी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र ने ''वंदेमातरम्'' गीत लिखा जो सन् 1905 इ. में बंग-भंग आंदोलन के समय भारत का प्रिय राष्ट्रीय गीत बना ।

राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ विदेशी राजसत्ता का दमन-चक्र भी चलता रहा पर इस दमन-नीति से ही पोषण पाकर राष्ट्रीय अभ्युत्थान लहलहाने लगा । सरकार की इस निर्मम कुचलने की नीति ने ही क्रान्तिकारी दल को जन्म दिया । यह आंदोलन 7 अगस्त, 1905 को विदेशी माल के बहिष्कार का गरम दल द्वारा एलान किया गया । 1906 में राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना लक्ष्य स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य प्राप्त करना है । स्वराज्य, विदेशी माल का बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा - यह कांग्रेस के चार मूल मंत्र हो गये । 1906 की कलकत्ता कांग्रेस में भारत के राष्ट्रीय भीष्म पितामह दादाभाई नौरोजी ने अध्यक्ष पद से स्वराज्य की माँग की । लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकने राष्ट्रीय भूमिका में कई सांस्कृतिक पर्व प्रवर्तित किये और महाराष्ट्र को ही नहीं, देश-भर को जागृत किया । उनके लेखों को राज द्रोहात्मक बताया जाकर 6 वर्ष का कारावास-दण्ड दिया गया । जेल से लौटते ही तिलकजी ने सिंह-गर्जना की कि **'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम उसे प्राप्त करके ही रहेंगे ।''** 'स्वदेशी-आंदोलन' के समय से ही बंगाल के नवयुवकों में अभूतपूर्व जागृति दिखाई दी । 1908 में खुदीराम वसुने मुजफ्फरपुर (बिहार) में जिलाजज को मारने के लिए बम का प्रयोग किया और सरकारने उन्हें फाँसी दे दी। इस धड़ाके का समर्थन करने के कारण लोकमान्य तिलक को 8 वर्ष का राजदण्ड दिया गया था । उन्होंने लिखा था - ''सरकार की शक्ति बमों से नहीं टूट सकती । पर बम से सरकार का ध्यान उस अंधेर खाते की तरफ खींचा जा सकता है जो उसकी सैनिक शक्ति के मद के कारण उपस्थित है ।''[115]

'फूट डालो और राज्य करो'' (Divided-empere) की कूट-नीति के पालन के लिए अंग्रेजी राजशासन कुख्यात है । भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति राज-भक्ति के भाव बढ़ाने के लिए 'मुस्लिम लीग' को जन्म दिया । 1906 में आणाखाँ के नेतृत्व में मुसलमान अमीरों ने माँग कि यदि देश के निर्वाचित प्रतिनिधियों को कुछ अधिकार देने हों तो मुसलमानों को अलग प्रतिनिधि चुनने दिया जाय । इसी बीच में मुस्लिम लीग का जन्म हो गया था जिसके मूल में लार्ड कर्जन की बंग-भंग नीति द्वारा हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की भावना थी । इसका जन्म भारतीय मुसलमानों के राजनैतिक

अधिकारों की रक्षा के लिए हुआ था ।''[16] किन्तु इसने भी 1913 में स्वशासन के ध्येय को स्वीकार किया और हिन्दू-मुस्लिम एकता को प्रोत्साहन मिला ।

सरकार की ओर से राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने के प्रयत्न निरन्तर होते रहे, किन्तु धीरे-धीरे सरकारने अनुभव किया केवल दमन चक्र से इसे नहीं दबा सकते । अतः उसने भारतीयों को कुछ राजनीतिक अधिकार देकर सन्तुष्ट करने का निश्चय किया। मार्ले मिंटो रिफार्म सन् 1909 में मार्ले मिंटो सुधारों की घोषणा की गई तथा 1911 में बंग-भंग रद कर दिया गया ।''[17]

सन् 1914 में प्रथम महायुद्ध होने पर वायसराय के द्वारा इग्लैंड की ओर से लड़ने के लिए पुष्कल भारतीय सेना भेजी गई । इस विश्वयुद्ध में भारत ने अंग्रेजी सरकार की धन और जन दोनों ही से प्रचुर सहायता की । नरमदल और गरमदल एवं मुसलमानों मिलकर एक समान उद्देश्य के लिए कार्य करने लगे । नरमदलीय कांग्रेसने राजभक्ति का उल्लेख करते हुए पुनः स्वशासन की माँग दुहराई । यह राजनीतिक वातावरण की शांति का परिचायक था। इसी समय सन् 1915 ई. में 'कर्मवीर गांधीजी' अफ्रिका के विजयी सेनानी के रुप में स्वदेश लौटे । सन् 1916 के अन्त में गांधीजीने सत्याग्रह के इस प्रथम प्रयोग के द्वारा गिरमिट प्रथा को बन्द करने के लिए चूनौती दी और सन् 1917 में वायसराय ने यह प्रथा बन्द कर दी । यह सत्याग्रह की पहली सफलता थी । इसी वर्ष के मध्य में चम्पारन के नील क्षेत्रों में सत्याग्रह-नीति से ही किसानों को विजय प्राप्त हुई । सन् -1918 ई. में भी इसी नीति से गुजरात के खेडा और अहमदाबाद के अकाल-पीड़ित कृषकों और श्रमिकों के कष्टों एवम् उनकी समस्याओं को दूर करने का सफल प्रयोग किया । ''इससे समस्त भारतवासियों के विचार-जगत् में एक अद्‌भूत क्रांति हुई । किसी ने समझा कि ब्रिटिश राज को झुका देने की शक्ति गांधीजी के पास है, किसी ने समझा कि यह हमारे उद्धार का एक ऐसा उपाय है जो भारत-भूमि में जम और फूल-फल सकता है । निःशस्त्र निर्बल जनता के हाथ में यह सबल आत्मिक अस्त्र देकर गांधी ने एक नये युग का सूत्रपात किया ।''[18] सन् 1918 में युद्ध समाप्त हुआ । इस प्रथम महायुद्ध तक भारत अंग्रेजो की सहायता करता रहा। लेकिन इस सहयोग और सहायता के उपहार स्वरुप काला कानून मिला ।

10 दिसम्बर सन् 1919 ई.एस.ए.टी. रौलेटने ''रोलेट एक्ट' बनाया । जिससे भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं एवं अधिकारों को आघात पहुँचा । यह वज्रघात राष्ट्र में असह्य हो गया। सारे देश में विद्रोह ज्वार का उठा । गांधीजीने तुरन्त ही चेतावनी दी कि यदि वे बीजक (बिल) कानून के रुप में आयें तो वे 'सत्याग्रह' का शंखनाद कर देंगे । गांधीजी का प्रभाव कांग्रेस एवम् पूरे देश पर छा गया था । गांधीजी का असहयोग आंदोलन सारे देश में फैल गया । उस समय लोकमान्य तिलक विलायत में

थे । उन्होंने आकर खेद प्रकट करते हुए कहा - '' मुझे इतना ही है कि जब गांधीजी ने सत्याग्रह किया तो उसमें संमिलित होने के लिए मैं यहाँ न था ।[19]

भारत में उस समय तक जागरण तथा स्वातंत्र्य की चेतना काफी फैल चुकी थी । जर्मनी, आफ्रिका, तथा रूस की जन क्रान्तियों के विवरण को पढकर देशवासियों में उत्साह का संचार हुआ और उनका मनोबल जाग उठा था । पंजाब के गर्वनर जनरल डायरने पंजाब में सैनिक शासन (Martial Law) स्थापित कर दिया । 13 अप्रैल (नव वर्ष के नूतन दिवस 'वैशाखी') के संध्या के समय 'जलियावाला बाग' में 20 हजार व्यक्तियों की एक सभा हुई । इसी समय जनरल डायर सेना की एक टुकडी के साथ घटनास्थल पर आए और लोगों को बिना चेतावनी दिये ही गोली चलाने की आज्ञा दे दी। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 400 हिन्दु-मुसलमान स्त्री-पुरुष-वृद्ध हत हुए और 1,500 आहत ![20] पराधीन राष्ट्र को प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों के मूल समर्थन का उपहार मिला। ये अत्याचार केवल अमृतसर तक ही सीमित नहीं थे, लाहौर , गुजरानवाला, कसूरतया अन्य स्थानों पर भी ऐसे ही कार्यो द्वारा लोगों को आतंकित किया जा रहा था । कर्नल जानसन, बोसवर्थ, स्मिथ और कर्नल औबरायन बड़े बर्बरतापूर्ण कार्य कर रहे थे । इन लोगों ने बम गिराये, मशीनगनें चलाई तथा अन्य कई तरीकों से लोगों पर जूल्म किया । लगभग इक्यावन व्यक्तियों को फांसी की सजा दी गई। पंजाब की खबरों पर कड़ा सेंसर बैठा दिया गया और लोगों के आने-जाने पर नियंत्रण लगा दिया गया । कई जिलों में मार्शल-लागू कर दिया गया । देशबंधु एंड्रयूज ने वहां जाने का प्रयत्न किया तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और मालवीयजी को जाने से रोक दिया ।[21] जलियाबाग भी निर्मम हत्याकांड के प्रति अपना रोष व्यक्त करते हुए कवीन्द्र-रवीन्द्र ने भी अंग्रेजी सरकार द्वारा दी गई सम्मानित ''सर'' की उपाधि को अस्वीकार कर दिया ।

सन् 1920 ई. में गांधीजी के भारतीय राजनीति में प्रवेश करते ही भारतीय राजनीति को सांस्कृतिक भूमि प्रदान की । गांधीजीने इस पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए असहयोग का सूत्रपात 1 अगस्त 1920 को किया । गांधीजीने इस प्रक्रिया के लिए सत्याग्रह को माध्यम बनाया । आचार्य नरेन्द्र देव ने लिखा है - ''उन्होंने सत्याग्रह के सिद्धांत और अपनी रण-पद्धति का पूर्ण विकास कर प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि राजनीति क्षेत्र में भी इसका उपयोग सफलता के साथ हो सकता है ।[22] अहिंसात्मक सत्याग्रह का अमोघ और अगम्य शस्त्र द्वारा गांधीजीने देश में व्यापक रुप से असहयोग आंदोलन चलाने का निश्चय किया । सन् 1920 ई में अखिल भारतीय काँग्रेस ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में गांधीजी की अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन की नीति को स्वीकार भी कर लिया । गांधीजी की अपील पर कौंसिल के चुनावों में दो तिहाई मतदाताओं ने भाग लिया । उनके विद्यार्थीओने स्कूलों में जाना छोड़ दिया । देशबंधु, चितरंजन दास तथा मोतीलाल नहेरु जैसे वकीलों ने वकीलात करनी छोड़

दी । बड़े उत्साह से विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई । देश के कोने-कोने में स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग का प्रचार किया जाने लगा । इस आंदोलन से देश के कोने-कोने में आशा और आत्मबल का संचार तो हुआ ही-साहित्य के विकास को भी बड़ी प्रेरणा मिली ।

दिसम्बर सन् 1921 इ. में अहमदाबाद में कांगेस का अधिवेशन हुआ, साथ ही सविनय अवज्ञा- आंदोलन को भी संगठित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया । इसी समय गोरखपुर में चौरी-चौरा नामक स्थान में पुलिस थाने में कुछ उत्तेजित लोगों ने आग लगा दी, जिसमें 22 सिपाई मर गए । इस घटना से गांधीजी को बड़ी चोट लगी । 12 फरवरी 1922 इ. कार्य समितिकी बैठक में गांधीजीने असहयोग स्थगित करने का निश्चय कर लिया । 13 मार्च 1922 को गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया । क्योंकि गांधीजीने सारे आंदोलन, विशेषकर चौरी-चौरा की, जिम्मेदारी अपने उपर ले ली। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने लिखा है - ''जिस समय गांधीजी की कृष, शांत और अजेय देह ने अपने भक्त, शिष्य और सहबंदी शंकरलाल बैंकर के साथ अदालत में प्रवेश किया तो कानून की निगाह में इस कैदी और अपराधी के सम्मान के लिए सब एक साथ उठ खड़े हुए ।''[23] गांधीजी को 16 मार्च सन् 1922 को छः मास के लिए कारावास का दण्ड दिया गया। सन् 1924 में उनको मुक्ति मिली । रूस में समाजवादी तथा साम्यवादी दलों का प्रभाव बढ़ने लगा था । वहाँ पर समाजवादी राज्य की प्रतिष्ठा होने पर भारत के उग्र राष्ट्रवादीयों में समाजवाद के प्रति एक विशेष प्रकार का उत्साह उत्पन्न हो गया था । सन् 1926-27 में सारे देश में हिंदू-मुस्लिम दंग हो रहे थे, जिन्हें शांत करने के लिए एवम् सांप्रदायिक एकता के उद्देश्य से गांधीजीने 21 दिन का उपवास किया । इस समय एक कांफ्रेस हुई जिसमें दंगो को रोकने के प्रयत्नों पर विचार किया गया । सन् 1927 में मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में राजनीतिक असंतोष ने उग्र रुप धारण कर लिया । कांग्रेस में वामपक्षी दल का उदय हो चुका था और वह पूर्ण स्वतंत्रता पर विचार किया गया । सन् 1928 इ. का वर्ष राजनीतिक चेतना का वर्ष था । ''पं.जवाहरलाल नेहरु तथा सुभाष चंद्र बोस दोनों ही अदम्य-इच्छा शक्ति क्रांतिकारी भावना और अटूट-देश प्रेम लाकर भारत के राजनैतिक क्षितिज पर उदय हुए ।''[24]

चम्पारन का सत्याग्रह, खेड़ा और बारड़ोली के सत्याग्रह, और बारडोली में सरकार द्वारा लगान बढ़ाये जाने पर सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में सत्याग्रह की सफलता आदि ने सारे देश के किसानों को जगा दिया । सन् 1927 के नवम्बर मास में ''साइमन कमीशन'' की वियूक्ति हुई । सन् 1928 में इस कमिशन के सदस्य बम्बई आये जिसका संपूर्ण राष्ट्रने बहिष्कार किया । लाहौर में लाला लजपतराय के नेतृत्व में इस कमिशन का विरोध किया गया। पुलिसवालों ने प्रतिष्ठित नेताओं को डंडे और लाठियों से पीटना शुरु किया ।

नवम्बर सन् 1929 को उस समय के युवराज एडवर्ड को भारत भेजा गया । कांग्रेस का अड़तालीसवाँ अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ जिसमें यह प्रस्ताव रखा गया कि जब तक पंजाब हत्याकांड और खिलाफत के अत्याचारों का निवारण नहीं होगा, भारतीयों को स्वराज नहीं मिलेगा, तब तक यह अहिंसात्मक असहयोग कार्यक्रम चालू रहेगा । वे चाहते थे कि हिन्दुस्तान की हकूमत जनता के हाथ में आनी चाहिए । सरकार जनता की माँगों को अस्वीकार करती रहे, तब सामुहिक सत्याग्रह शुरु किया गया।

सन् 1929 इ. में भारत की आंतरिक स्थिति भी गंभीर हो गई थी । विद्यार्थी, मज़दूर, किसान हर वर्ग के व्यक्ति में आक्रोश की भावना थी। 31 डिसम्बर सन् 1929 इ में कांग्रेस के सभापति पं.जवाहरलाल नेहरु ने भाषण में कहा कि स्वतंत्रता से तात्पर्य हमारे लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूर्णतया स्वतंत्र हो जाने से है। 26 फरवरी सन् 1930 को कांग्रेसने अपना प्रथम स्वतंत्रता दिवस मनाया । उस दिन विशाल सार्वजनिक सभाओं का आयोजन हुआ, जनता ने सामूहिक रुप से उत्साह का प्रदर्शन किया । फरवरी सन् 1930 में कांग्रेस की कार्यसमितिने गांधीजी को यह अधिकार प्रदान किया कि वे जब चाहे सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ कर सकते है । 12 मार्च सन् 1930 में गांधीजीने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दाण्डी यात्रा की और 16 अप्रैल सन् 1930 को साबरमती से 200 मील पर स्थित दण्डीग्राम में गांधीजीने नमक कानून के विरोध में सत्याग्रह किया ।

12 नवम्बर सन् 1930 को लन्दन में पहली गोलमेज कांफ्रेस प्रारंभ हुई लेकिन इसका कोई परिणाम न आया । श्री सुभाष चंद्र बोस के शब्दों में, ''इस कांफ्रेस के परिणाम स्वरुप भारत को दो कड़वी गोलियाँ देने के लिए हाथ बढाया गया संरक्षण और संघराज्य-इन कड़वी गोलियों को खाने योग्य बनाने के लिए ''उत्तरदायित्व'' की शक्कर उनके उपर लपैट दि गई थी ।''[25] मार्च 1930 में गांधी-इरविन समझौता हो गया । पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रयत्न चल ही रहा था कि इसी बीच सरकार ने सन् 1935 में वैधानिक ऐक्ट की घोषणा की। इस एक्ट से संतुष्ट न होते हुए भी सन् 1937 के प्रान्तीय निर्वाचनों में कांग्रेसने भाग लिया । आठ प्रांतो में (मद्रास, संयुक्त प्रांत, बिहार, उड़ीसा, बम्बई और मध्य प्रांत) कांग्रेस के मंत्रिमंडल बने ।

एक सितम्बर, 1939 को द्वितीय महायुद्ध का प्रारंभ हो गया। अंग्रजोने भारतीय नेताओं से परामर्श किये बिना भारतीय सेनाओं को झोंक दिया और धन-जन की सहायता वहाँ भेजी । इस कार्य से नाराज़ होकर कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिये । और प्रांतो का शासन गर्वनरों के अधिकार में आ गया । भारत सरकार को केन्द्रीय मंत्रिमंडल के प्रति उत्तरदायी बन दिया जाय, इस मार्ग को अंग्रेज

सरकार ने अस्वीकार किया। अतः महात्मा गांधीने 11 अक्तूबर सन 1940 को व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ किया । इस आंदोलन का सूत्रपात विनोबाभावे ने किया ।सरकारने देश के नेताओं को जेल में बन्द कर दिया । इधर अंग्रेजो और भारतीय जनता के बीच संघर्ष चल ही रहा था कि मुस्लिम लीगने मार्च, सन् 1940 में एक प्रस्ताव स्वीकृत कर पाकिस्तान की मांग की। 1942 में क्रिप्स के आने पर समस्या का समाधान न होने से वह वापिस लौट गया। अगस्त 1942 में बम्बई की अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक में **'भारत छोड़ो'** का ऐतिहासिक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसमें स्पष्ट शब्दों में स्वतंत्रता की मांग की गई । **''अंग्रेजो भारत छोड़ो''** की घोषणा से सारे देश में क्रांति की ज्वाला प्रजवलित हो गई । जनता के खुलकर विरोध किये जाने पर सरकारने पुलिस और फौज की सहायता से आंदोलन को कुचल दिया ।[26] 1943 से सन् 1945 तक का समय भारत के लिए बड़ी मुश्किलों, मुसीबतों से भरा हुआ था । 6 फरवरी सन् 1943 के दिन गांधीजी ने 21 दिन का उपवास किया । इनके उपवास से सारे देश में नई हलचल प्रारंभ हो गई । इस प्रकार एक ओर राष्ट्रीयता की लहर सर्वत्र फैल गई थी तो दूसरी ओर भीषण अकाल पड़ा । जिसमें चालीस लाख व्यक्ति भूख से मर गये । देश के बड़े-बड़े नेता जेल में बंद थे । उनकी अनुपस्थिति में जनता ने अपने हाथों में आंदोलन का सूत्र ले लिया । जनताने तार काँटे, थानों में आग लगा दी, आदि हिंसा पूर्ण कार्य किये । जिससे सरकारने दमन चक्र शुरु किया। अंग्रेजो के भीषण दमनचक्र के साथ-साथ स्वार्थ की दरिया में पैदा हुए भारतीय पूंजीपतियों के हाथ से जनता को पीसना पड़ा ।

मिस्टर जिन्ना ने इस स्वतंत्रता संग्राम में 16 अगस्त 1946 का दिन सीधी कार्यवाही के लिए तय किया ।[27] उस दिन कलकत्ते में हिन्दुओं का भीषण कत्लेआम हुआ। 3000 से भी अधिक हिन्दुओं को कत्ल कर दिया गया। इस की प्रतिक्रिया स्वरुप देश भर में सांप्रदायिक दंगे हुए । सन् 1946 इ. में ब्रिटिश पार्लामेन्ट के सदस्यों का एक दल भारत आया । उन्होंने भारत की वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया, भारत को स्वतंत्र करने की सलाह दी । अन्ततः राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय दबाव के फलस्वरुप अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा । अंग्रेजो ने भारत छोड़ते-छोड़ते हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रुप में दो भागों में विभाजित किया । ''बँटवारे के साथ पंजाब में भीषण सांप्रदायिक दंगे हुए ।''[28] ''लाखों शरणार्थी पाकिस्तानी प्रदेशों से भागकर हिन्दुस्तान आए । खून से रंगी हुई धरती पर घृणा के बीज बो कर, सोने की चिड़िया के पर काटकर, उसे तड़फड़ाता हुआ छोड़कर अंग्रेज अपने देश वापिस चले गए । 15 अगस्त 1947 को भारत का स्वतंत्र राष्ट्र के रुप में, विश्व जनता के सामने पादुर्भाव हुआ ।[29]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उनके कष्टों का अंत नहीं हुआ था । दोनों देशो में एकसाथ भीषण दंगे हुए , जिसमें हत्या, लूंट, बलात्कार आदि पाश्विक घटनाएँ एकसाथ घटी । ''आबादियों की अदला-बदली भी एक करुणाजनक वस्तु थीं, हजारों व्यक्ति बे घरबार हो गये । धनी टुकड़ों के मोहताज बन गए। मार्ग के कष्ट और यातनाएँ, शरणार्थी कैम्पों की दुर्दशा और जीविका विहिनता की कठिन परिस्थितियाँ देश के घर घर की कहानियाँ बन गई ।''[30] अन्त में जनवरी सन् 1950 में नए संविधान के अनुसार भारत एक गणराज्य के रुप में अस्तित्वमें आया । भारत का नया संविधान लगभग 400 अनुच्छेदों में लिखा गया था। डा. राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति और पं.जवाहरलाल नेहरु भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे ।

प्रजातंत्र केवल राजनीति का ही नहीं, समाज और संस्कृति का भी प्रतीक बना । इस युग में संघर्ष रत राष्ट्रीय चेतना का लक्ष्य भी प्रजातंत्र की प्राप्ति था। अतः तत्कालीन काव्य-साहित्य में यह युग-चेतना प्रतिध्वनित होती है ।

गुप्तजी का प्रबुद्ध चेतना भारतीय संस्कृति के अतीत-कालीन स्वरुप की ही मुखापेक्षी नहीं रहीं, बल्कि उसके विकासशील तत्वों से प्रेरणा भी ग्रहण करती रही । उनका काव्य निर्माण सोद्देश्य है और उसे समय-सापेक्ष भी कहा जा सकता है। उनका अतीत-प्रेम वर्तमान युग के लिए है और यहीं उनकी सार्थकता है । यह उनकी व्यापक राष्ट्र-भावना ही है, जो नवोत्थान के कारण अतीतोन्मुख हुई है ।[31] गुप्तजी का हिन्दू राष्ट्रवाद उत्तरोत्तर विकसित हुआ । उनका आरंभिक स्वरुप हिन्दू-राष्ट्रवाद से निर्मित हुआ और वह क्रमशः कांग्रेस की राजनीति के समीप आता गया और गांधीजी के राजनीतिक आदर्श से शक्ति-संचय करता रहा और अंत में विश्व-जन-तंत्र का समर्थक बना । और गुप्तजी भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के अग्रणी कवि सिद्ध हुए । कवि गांधीजी के राष्ट्रवाद से प्रभावित नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने उनके राजनीतिक आदर्शो को भी अपनाया है। गुप्तजी गांधीजी की भाँति अहिंसक राज्य क्रांति के पक्षपाती रहे है । अस्पृश्यता निवारण, हिन्दू-मुसलमानों में एकता, खादी और ग्रामोद्योग आदि विषयों को गुप्तजीने इसीलिए अपने काव्य का आधार बनाया है। उन्होंने गांधीजी, श्री विनोबाभावेजी, श्री जवाहरलालजी और स्वर्गीय पटेलजी का राष्ट्र, प्रतिनिधि के रुप में स्तवन किया है ।[32]

'अफ्रीका-प्रवासी भारतवासी', कृष्ण-कथा, किसान, अजित आदि गुप्तजी की सामाजिक-राजनीतिक प्रेरित कविताएँ है और अपने सिद्धांतो के अनुरुप राजनीतिक आदर्श का निर्माण किया । ''निश्चय ही गुप्तजी का राजनीतिक द्रष्टिकोण भौतिकवादी नहीं है, मानवतावादी है। गांधी-दर्शन से अनुप्राणीत सर्वोदयवादि है। वे लोकतंत्र के पक्षपाती है । उनकी द्रष्टि में विश्व की सर्वग्रासी समस्याओं का हल गांधीदर्शन ही है ।[33]

गुप्तजी की राष्ट्रव्यापी प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर कांग्रेस की विचारधारा और गांधीजी के राजनीतिक आदर्श के समीप आती गई और वे भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के अग्रणी कवि सिद्ध हुए ।(34)

गांधीजी जब अफ्रीका में थे कवि ने उन्हें ''अफरीका प्रवासी भारतवासी''(35) कविता अवलोकनार्थ भेजी थी । और कृषक कथा की रचना की थी ।(36) जो किसान शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई । स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी जी का संसर्ग कवि की राजनीतिक चेतना के परिष्कार में विशेष रुप से सहायक हुआ और वह आतंकवादीयों के संपर्क में भी आया ।(37)

'अजित' में उन्होंने हिंसक क्रांति पद्धति को अनुपयुक्त सिद्ध किया है । तथा सत्याग्रह और अहिंसा की नीति को उपयुक्त माना है । ''अंजलि और अर्घ्य'' गांधीजी की मृत्यु के पश्चात लिखी गई कृति है । ''राजा-प्रजा'' की रचना रियासतों के विलीनीकरण को लेकर हुई है । इसमें प्रजातंत्र के स्वर ध्वनित होते है ।

गुप्तजीने गांधीजी की तरह आदर्श राज्य के लिए राम-राज्य की कल्पना की है ।''अवध'' में अहिंसक क्रांति को प्रधानता दी गई है । उनका कथन है कि मानवता घृणा ही नहीं, प्रेम की वस्तु है, अतः एव पापी का उपकार और पापों का प्रतिकार किया गया ।

गुप्तजीकी ''भारत-भारती'' भी राष्ट्रीय भावना से प्रभावित कृति है । बंगाल में तथा अन्यत्र सशस्त्र क्रांतिकारियों की और सारे देश की जनता देख रहीं थी । काश्मीर से कन्याकुमारी तक अनास्था फैल गई थी । शासकों ने उनके देशद्रोही माना लेकिन सही अर्थो में तो वे देशभक्त थे । अशिक्षित जनताने उनकी बात को सही मानी । इसलिए जब लार्ड हार्डिज पर बम फेंका गया तब तो उनको ऐसा लगा कि मानो ब्रिटिश सत्ता पर ही बम फेंका गया हो । उस समय उग्रवादियों का एक दल क्रांति चाहता था और दूसरा दल लोकमान्य तिलक का था । तिलकजी ने सारे राष्ट्र को एक मंत्र दिया था ''स्वतंत्र हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है ।'' ऐसे क्षणों में ''भारत-भारती'' (उद्‌बोधनात्मक काव्य) का प्रकाशित हुआ । गांधीवादी राजनीतिज्ञ चिरगाँव में गुप्तजी भी सक्रिय राजनीतिज्ञ है । किन्तु कवि ने राजनीति में सक्रिय भाग भी नहीं लिया फिर भी 1 अप्रैल 1941 को कवि, उनके अग्रज श्री रामकिशोरजी गुप्त और श्री निवासजी को गिरफ्तार किया गया । 10 जून को उनको झांसी से आगरा सेन्ट्रल जेल में भेजा गया । उस समय पुलिस का एकमात्र यहीं काम था । ''देश में चारों ओर दिन-रात, रात-दिन पुलिस का काम बस यहीं था कि पकड़ो, अंधाधूंध पकड़ो । मानो बहेलिए को ऐसी पकड़ने की ऋतु शायद फिर कभी भी जीवन में हाथ न लगे । जब जेल पहुँचे तो सारी जेल उन जैसे ही नागरिकों से भरी हुई थी ।(38)

गुप्तजी को गिरफ्तार कारण यहीं था कि उन्होंने सभाओं में भाषण दिए हैं । उनको अजीब मौके पर और असाधारण ढंग से गिरफ्तार किया गया। सायंकाल हेड कांस्टेबल ने आकर उनको साथ चलने के लिए कहा । उनको कलेऊ करने से और चश्मा लेने से रोका गया । वे ''भारत-रक्षा-कानून'' के अधिन गिरफ्तार हुए थे ।

गुप्तजी के बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया लेकिन दूसरी और यह भी सत्य है कि उन्होंने अपनी आयुभर सरस्वती की उपासना की और यह भी हिंदी के माध्यम से । तब गुप्तजीके लिए राजनीति से अलग रहना संभव नहीं है । क्योंकि ''सरकार समझती है कि हिन्दी में देश का जीवन स्पंदित है । सरकार देखती है कि हिंदी में देश का जीवन वाणी पाता है । हिन्दी में भारत की आत्मा बोलती है और वह आत्मा अशांत है , जागृक है, विद्रोही है ।''[39] उनकी गिरफ्तारी के बारे में आगे लिखा गया है - ''गुप्तजी की गिरफ्तारी अगर हम हिन्दी भाषियों को इस तथ्य के प्रति जगा दे, समझा दे, कि हम देश की आत्मा की वाणी के रक्षक है, उस आत्मा में झिलमिलाती हुई विद्रोह सामर्थ्य के प्रहरी, तो वह गिरफ्तारी अन्याय और मूर्खता से भरी होकर भी धन्य है और यदि वह चेतना, हममें नहीं उत्पन्न होती, तब मै. गुप्त को अपने बीच स्वच्छंद, रखने के लिए अधिकारी नहीं है । उससे उनके प्रति किया गया अन्याय कम नहीं हो जाता, पर तब उसका विरोध करने का मुँह हमारा नहीं है ।[40]

जब गुप्तजी आगरा जेल में थे तब उनकी छप्पनवीं वर्षगांठ के अवसर पर समस्त बन्दियों की उपस्थिति में आचार्य नरेन्द्रदेव ने उनका अभिनंदन पत्र पढ़ा । गांधी-जयंती पर चौबीस घंटे तक चर्खा कताई हुई और इसके बाद पूर्णाहुति के समय कई व्याख्यान हुए । गुप्तजी जेल में दो ही कार्य करते थे - कताई और पूजा । सन् 1941 में गांधीजी के जन्म दिन 2 अक्तूबर को उपहार रुप में तीन करोड़ गज सूत और बारह हजार रुपए अर्पण किए । इसी अवसर पर उन्होंने कहा कि ''हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित कवि श्री मै. गुप्त को अपने पत्र में लिखा है कि आपने और आपके सहयोगीयों ने जेल में जो सूत काँता है उससे आप स्वराज्य को अधिकाधिक निकट लाने में समर्थ हुए है ।''[41]

गुप्तजी राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी, महमना मदनमोहन मालवीय, पं. जवाहरलाल नेहरु, विनोबा भावे, आचार्य नरेन्द्र देव, स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी आदि व्यक्तियों से अत्याधिक प्रभाविक हुए हैं। गुप्तजीने अपनी राष्ट्रीय भावना के लिए गांधीजी को ही आराध्य माना है । जब गांधीजी अफ्रिका थे उस समय कवि ने वहाँ कई कविताएँ भेजी थी । गुप्तजी कृत ''अनघ'', ''साकेत'', ''विश्व वेदना'' और ''अजित'' में गांधी दर्शन की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है । ''मैथिली काव्य मान-ग्रंथ के लिए उन्होंने

लिखा था - ''कवि मैथिलीशरण को मै अच्छी तरह जानता हूँ । वे भी मुझे भली भाँति जानते है ।''[42] ''साकेत'' पर कवि और गांधीजी का पत्र व्यवहार भी हुआ है । गुप्तजी मानते है कि नहेरुजी राष्ट्रनिर्माण के समर्थक ही नहीं, लेकिन प्रशंसक भी है । कवि की ''भूमि-भाग'' विनोबाजी से प्रभावित होकर लिखी गई कृति है । स्व. गणेशशंकर विद्यार्थी गांधीजी की अहिसा और सत्याग्रह में मानते थे और वे क्रांतिकारियों को सत्याग्रही बनाने के पक्ष में थे । गुप्तजीने ''अजित'' की रचना में इस द्रष्टिकोण को रखा है । गणेश जी देशी राज्यों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करना चाहते थे । कविने ''राजा और प्रजा'' में इस द्रष्टि को प्रधानता दी है । इसके अतिरिक्त कवि का डा.भगवानदास, स्व.शिवप्रसाद जी, श्री प्रकाशजी, स्व. रामनारायण जी मिश्र, कृष्णकान्तजी, राजर्षि टंडन, स्वर्गीय सी.वाई.चिन्तामणि, मिनिस्टर केसकर आदि से भी संबंध रहा है ।

सामाजिक :-

19 वीं शताब्गी में भारत की सामाजिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थीं। वर्णाश्रम-धर्म और जाति व्यवस्था अपने विकृत रुप में प्रसिद्ध थी । बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा आदि समाज में प्रचलित थे । हिन्दू समाज अंध विश्वासों, वृतों-त्यौंहारों और देवी देवताओं की पूजाको महत्व देता था । उस समय बाह्याचार को ज्यादा महत्व दिया जाता था। हिन्दू प्रजा तीर्थ यात्रा, पण्डों और पुरोहितों को दान पुण्य करती थीं । भारतीयों में धार्मिक वैमनस्य नहीं था । सल टॉमस रो ने लिखा था कि यहाँ सौ से अधिक जातियाँ और धर्म है । पर वे अपने सिद्धान्तो और पूजा-विधि पर झगड़ते नहीं। हर एक को अपने ढंग से अपने ईश्वर की आराधना करने की पूरी छूट है । धर्म के कारण सताया जाना यहा अज्ञात है । अंग्रेजो के आगमन से भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार और प्रचार हुआ जिससे भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आया । सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करने वाले राजा राममोहनराय है । उन्होंने सती-प्रथा, गोरे और काले के भेदभाव का विरोध किया । इनके विरोध में उन्होंने आंदोलन किया । बंगाल की कुलीन-प्रथा के विरुद्ध भी उन्होंने आंदोलन किया। देवेन्द्रनाथ ठाकुरने कहा कि विवाह के समय कन्या की आयु अठारह वर्ष होनी चाहिए । स्वामी दयानंद ने वैदिक धर्म को महत्व दिया । उन्होंने भी विधवा-विवाह, बाल-विवाह और अस्पृश्यता का विरोध किया । महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानडे, नारायण चन्द्रवरकर और रामबाई सरस्वती ने आंदोलन किया । दक्षिण में आंदोलन का संचालन रघुनाथ राव, वीरेसलिंगराम और ''इण्डियन सोशल रिफार्मर'' के संपादक नटराजन ने किया । इन सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों ने राष्ट्रीय रुप ले लिया । रामकृष्ण, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एवं विवेकानंद आध्यात्मिक संदेश के प्रचारक है । सन् 1857 के विद्रोह के पश्चात अलीगढ़

में कालेज की स्थापना की गई। सन 1899 में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ। जिसमें तीन सौ मुसलमान थे । हिन्दू मिलों, कारखानों और दफ्तरों में कार्य करने लगे । सरकार की नीति सभी धर्मो के लिए समान थीं । सभी वर्ग समान थे । अधम वर्ण और सवर्ण दोनों ही समान थे अर्थात उस समय अछूतों का उद्धार किया गया । शिक्षित समुदाय की शुद्धि होने लगी जिससे रुढ़ियों और परंपराओं का भी विरोध हुआ । शास्त्र मर्यादा में लोगों का विश्वास नहीं रहा । ''(आत्तवाक्य) और शास्त्र मर्यादा में श्रद्धा कम हो चली थी और गतानुगतिकता का विरोध गांधी, रवीन्द्र, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज सभी होने लगी थी और आत्म गौरव की विस्मृति हो चुकी थी ।''[43] 19 वीं सदी के अंत में कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लाहौर और इलाहाबाद में विश्व-विद्यालयों की स्थापना हुई ।

केशव कर्वे और गोपालकृष्ण देवधर ने नारी सुधार और नारी शिक्षा को महत्व दिया । सन् 1893 में कर्वे ने एक विधवा ब्राह्मणी से विवाह किया । और उसी वर्ष विधवा पुर्नविवाह सिंघ का सभापतित्व भी किया । उन्होंने सन् 1899 में हिन्दू विधवा-सदन की और सन् 1916 में ''इंडियन वीमेन्स युनिवर्सिटी की स्थापना की । देवधरने सन् 1909 में ''पूना-सेवा-सदन'' की स्थापना की । सन् 1924 तक इसकी सभानेत्री रामबाई रानडे रही। रानडे ने सन् 1890 में कहा कि 12 वर्ष की लड़कियों का विवाह करना चाहिए अर्थात पहले कन्या की आयु 10 वर्ष की थी । उसको बढाकर 12 साल की गई। आर्य समाज ने पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह आदि का विरोध किया और विधवा विवाह का समर्थन । मुसलमानों द्वारा अपकृत नारियों को पुनः ''शुद्ध'' कर हिन्दू धर्म में ग्रहीत कर लेने का विधान भी स्वामी दयानंद ने प्रस्तुत किया। सन् 1906 में बम्बई सरकारने एक विधान बनाया । जिसके द्वारा देवताओं के लिए स्त्रियों के समर्पण में योग देनेवाले पुजारी दंड के योग्य माने गए । सन् 1909 में मैसूर सरकारने मंदिरों में नृत्य बंद करा दिए। सन् 1917 में ''वीमेंस इंडियन असोसिएशन'' की स्थापना की गई । श्रीमती एनी बेसेन्ट इसकी सभापित थी । रामबाई रानडे, सरलादेवी चौधरानी और सरोजिनी नायडू ने राजनीतिक अधिकारों की भा माँग की । अंग्रेज सरकार का ध्यान नारियों की दुर्दशा की ओर गया । उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा को महत्व दिया । मई 1849 में कन्या पाठशाला की स्थापना की गई। पुरुषों ने भी नारी आंदोलन का समर्थन किया । लाला लजपतराय का कथन है कि ''स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है । क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर असर पड़ता है । चाहे भूतकाल हो या भविष्यकाल, पुरुषों की उन्नति बहुत कुछ स्त्रियों पर निर्भर है । उन स्त्रियों से आप निश्चय ही वास्तविक नर पैदा करने की आशा नहीं कर सकते, जो कि गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई है ।''[44]

ब्रिटिश सरकार की इच्छा भारत में राज्य स्थापना की थी । भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद उन्होंने मुसलमानों के साथ-शत्रु-सा व्यवहार किया । मुसलमानों को नौकरियाँ भी

नहीं दी जाती थी । उस समय मुस्लिम प्रजा शिक्षा से भी वंचित रहती थी क्योंकि अरबी-फारसी की शिक्षा के लिए कोई सुविधा नहीं थी । लेकिन सन् 1857 के बाद सरकार की नीति बदली । सरकार ने मुसलमानों के प्रति सहानुभूति दिखलाई। सन् 1912/13 में शिक्षित मुसलमान कांग्रेस के निकट आए । उन्होंने भातृभावना को भी बल दिया । सन् 1916 में कांग्रेस लीग ऐक्ट की स्थापना हुई ।

संक्षेप में इस युग की सामाजिक दशा का सिंहावलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज अपनी दुर्बलताओं की ओर से सचेत हो गया था। जाति प्रथा के विरोध में आंदोलन प्रारंभ हो गया था । अस्पृश्यता निवारण और हरिजन आंदोलन की नींव पड़ चुकी थी तथा नारियों के प्रति होनेवाले अत्याचारों के विरोध के स्वर भी सुनाई पड़ने लगे थे । शिक्षा प्रसार और प्राचीन भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा की गई । जिससे आत्महीनता की भावना को दूर करने में सहायता मिली । जाति-पांति तोड़क नामक मंडल की स्थापना की गई । ''सन् 1937 में आर्य विवाह कानून द्वारा आर्य समाजियों के अंर्तजातीय विवाहों का वैध बना दिया गया ।[45] अछूत प्रजा ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुई । सन् 1920 में गांधीजी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए अनेक कार्यक्रम किए । उनके लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई। सन् 1932 में अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था कर जब विदेशी शासकों ने हिन्दू समाज को दो विरोधी कैम्पों में बांट देना चाहा तो गांधीजी के अनशन के द्वारा ही वह कुचक्र विफल किया। इसी समय उन्होंने अछूतों को ''हरिजन'' नाम दिया और उनकी दशा सुधारने के लिए ''हरिजन सेवकसंघ'' की स्थापना की तथा ''हरिजन'' पत्र का प्रकाशन आरंभ किया ।''[46] हरिजनों को धारसभा में स्थान दिया गया । सन् 1919-20 में सांप्रदायिक दंगो के कारण हिन्दु-मुस्लिम जातियों के बीच वैमनस्य का वातावरण पैदा हुआ । असहयोग के पहले दोनों जातियों के बीच भीषण दंगे हुए लेकिन इस आंदोलन के बाद दोनों के बीच पुनः मैत्री की भावना पैदा हुई । सन् 1923 में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । जिसमें गांधीजी की तुलना ईसा मसीह से की गई। लेकिन सन् 1924 में मौलाना मुहम्मद अली ने कहा कि ''मिस्टर गांधी का चरित्र चाहे शुद्ध क्यों न हो, परंतु धार्मिक दृष्टि से मैं व्यभिचारी और पतित मुसलमान को मिस्टर गांधी से अच्छा समझता हूँ ।''[47] इस वैमनस्य का कारण अंग्रेजो की ''फूट डालो और राज्य करो'' की नीति थी । सन् 1920 के असहयोग आंदोलन में अनेक नारियों ने भाग लिया । गांधीजी ने उनको शराब, अफीम और विदेशी कपड़ो की दुकानों पर धरना देने के लिए कहा था । बाद में, कांग्रेस कार्य समितिने भारतीय महिलाओं को बधाई देते हुए कहा कि समिति भारतीय महिलाओं को इस बात की बधाई देती है और उनकी प्रशंसा करती है कि वे राष्ट्रीय आंदोलन में दिन दूने रात चौगुनें उत्साह से भाग ले रही हैं और प्रहारों, दुर्व्यवहारों और सजाओं को वीरतापूर्वक सहन कर रही है । सन् 1930 में 'सारदा-एक्ट' या 'बाल विवाह निरोधक कानून' ने नारियों के लिए अनेक प्रशंसात्मक कार्य

किए । पर्दा-प्रथा, अशिक्षा आदि को दूर किया गया । सन् 1916 में पंडित मदनमोहन मालवीय ने बनारस में सेंट्रल हिन्दू कालिज की स्थापना की । सन् 1920 में अलीगढ़ में मुस्लिम कालिज की स्थापना की गई । सन् 1928 में हैदराबाद में इस्मानिया विश्व-विद्यालय की स्थापना की गई। जिसमें साहित्य के सिवा अन्य विषय उर्दू के माध्यम से पढ़ाए जाते थे ।

गांधीजी का असहयोग आंदोलन शुरु हुआ । इसके द्वारा सरकारी स्कूलों और कालिजों का बहिष्कार किया गया । ''अत : अनेक नये राष्ट्रीय विद्यालय इस काल में खोले गए। तिलक स्कूल ओफ पालिटिक्स लाहौर, नेशनल कॉलेज लाहौर, जामियामिलिया इस्लामिया दिल्ली, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, काशी विद्यापीठ काशी, बिहार विद्यापीठ पटना, महिला विद्यापीठ प्रयाग, हिन्दी साहित्य आगरा जैसी अनेक संस्थाएँ खुलीं ।''(48)

श्री निवास रामानुजन (1918), श्री जगदीशचन्द्र बोस (1920), श्री चंद्रशेखर वेंकट रमण (1930), श्री मेघनाद साही (1931) आदि वैज्ञानिक रायल सोसायटी के सदस्य थे । उर्दू में इकबाल, बंगला में शरत् और रवीन्द्र , मराठी में तिलक, काशीनाथ राजवाडे, हरनारायण आप्टे, गुजराती में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, महात्मा गांधी, महादेव देसाई, तामिल में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, तेलगु में चिन्तय सूरि और उड़िया में राघनाथ राय जैसे साहित्यकारों ने राष्ट्रीय भावनाओं को महत्व दिया । नन्दलाल बसु ललित कलाओं में प्रसिद्ध थे । उदयशंकर ने भारतीय शास्त्रीय नृत्यकला को पुनरुजीवन दिया । मौलाना मोहम्मद अली, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, एनी बिसेन्ट, प. मदनमोहन मालवीय, बी.जी. हार्निमेन, सी.वा.चिन्तामणि और फिरोजशाह मेहता आदि उस समय के राष्ट्रीय पत्रकार थे । गणेशशंकर विद्यार्थी, पं. अंबिकाप्रसाद बाजपेयी, श्री बाबुराव विष्णु पराड़कर आदि हिन्दी के पत्रकार थे । इस पकार मराठी, गुजराती, बंगला, उर्दू आदि में पत्रिकाएँ निकलीं । सरकारने इन पत्रों का दमन किया । सन् 1914 में योरोपीय महायुद्ध शुरु हुआ तब पत्रों पर सेंसर लगाया गया । ''1919से सत्याग्रह और असहयोग की खबरों का प्रकाशन पूर्णतया रोक दिया गया और 1930-32 में प्रेस आर्डीनेन्स के द्वारा उन्हें कुचलने की चेष्टा की गई, उन पर पुलिस के घावे हुए, उनकी प्रतियाँ जब्त कर ली गई और उनके सम्पादकों को जेल में डाल दिया गया ।''(49)

गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन से भारतीय जनता नैतिक द्दष्टि से उपर उठी । इस युग में गांधीजी का काफी प्रभाव पड़ा जिससे इस युग को ''गांधी-युग'' भी कहा गया। सन् 1929 में सरोजिनी नायडू गिरफ्तार हुई जिससे भारतीय नारियों को प्रेरणा मिली। सन् 1929 से 1932 तक अनेक स्त्रियों को दण्ड दिए गए। उन्होंने कठोर सजाएँ लाठीचार्ज संपत्ति-हानि और समान हानि का मुकाबला किया।

उन्होंने शराब और विदेशी कपड़ो की दुकानों पर धरने किए । उस समय उनको कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा । रुढ़ियों, मिथ्या पवित्रता, छूआछूत, भेदभाव आदि को नष्ट कर दिया । इस संघर्ष से उनको स्वाधीनता मिली जिसकी वे अपेक्षा रखती थी। स्त्रियों को समानता मिली। उनको भी पुरुषों के समान मान, पद आदि मिला । सन् 1935 से स्त्रियों को मतदान का अधिकार भी दिया गया। सन् 1937 तक 80 से भी अधिक स्त्रियाँ निर्वाचित की गई । उस समय भारतीय महिलाओं का स्थान विश्व में तीसरा था ।

स्वायत्त-शासन के साथ-साथ शिक्षा-क्षेत्र में जागृति आई । साक्षरता आंदोलन, प्रौढ़ शिक्षा आंदोलन, अछूतों तथा स्त्रियों को शिक्षा देने का कार्य भी हुआ । गांधीजी ने बेसिक शिक्षा को महत्व दिया । इससे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में नवीनता आई । सन् 1944 में ''केन्द्रिय सलाहकार समिति'' ने ''सार्जेन्ट शिक्षा योजना'' के नाम से युद्धोत्तर शिक्षा विकास योजना बनाई। सन् 1945 के बाद केन्द्रिय शिक्षा विभाग पृथक हो गया और इसका उत्तरदायित्व वाईसराय की कार्यकारिणी के एक सदस्य को सौंपा गया । सन् 1946 में विश्वविद्यालय अनुदान समिति की स्थापना हुई । सन् 1947 से शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में प्रगति हुई । सन 1947 में भारत में इक्कीस (21) विश्वविद्यालय थे । लेकिन 1955 तक बत्तीस (32) विश्व विद्यालय हो गए । स्वतंत्रता के बाद स्कूलों में भी वृद्धि हुई । उस समय टेक्नीकल शिक्षा देने वाली संस्थाएँ भी खोली गई । नारियों की शिक्षा के लिए भी सरकारने प्रबन्ध किया । विधवाओं को छात्रवृत्तियाँ देने का प्रस्ताव रखा गया । सन् 1932 में दिल्ली में लेडी इरविन कॉलिज की स्थापना हुई । सहशिक्षा को महत्व दिया गया । भारतीय स्त्रियों ने विदेशों में भी भ्रमण किया । श्रीमती सरोजिनी नायडू ने यूरोप और अमरिका का प्रवास किया। श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित को अमरिका तथा रुस में भारतीय राजदूत का पद दिया गया । इस काल में अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन को भी बल दिया गया । अछूतों और सवर्णो को समान अधिकार दिए गए । हमारे आलोच्य कवि का समस्त काव्य एवं जीवन युगीन परिस्थितियों का परिष्कार करता हुआ मानव के जीवन को एक नवीन प्रगति-पथ पर अग्रसर करता है । ऊँचनीच, छूआछूत आदि संकीर्ण मनोवृत्तियों से ऊपर उठकर समानता, स्वतंत्रता एवं विश्वमानवता के महान आदर्श समाज के संमुख प्रस्तुत करता है ।

सांस्कृतिक :-

आज भारत विकसित राष्ट्रो के समकक्ष खडा होने लगा है इसके पीछे 19वी शताब्दी की प्रगतिशील शक्तियां काम करी है। और यही शक्तिर्या नवीन चेतना का संचार करती है जिसका फल आज के भारत का स्वरुप है। 19वी शताब्दी में भारतीय और युरोपीय संस्कृतियो के संगम से दोनों

राष्ट्रोने एक दूसरे को समझा है। अंग्रेजो के संपर्क में आने से भारतवर्ष में नवीन संस्कृति आई। इस भारतीय जीवन और साहित्य में जो युगान्तर आया उसका श्रेय आंग्ल-भारतीय संपर्क को है। 19वी शताब्दी से जिस 'आधुनिक चेतना' का जन्म भारतीय जीवन में हुआ वही आज विकसित रुप में हमारे सामने है। भारत में रेल, डाक, तार आदि अद्यतन साघन भी आए। मध्ययुगीन रीति-नीतिमें भारत में राज्य स्थापित किया। जवाहर लाल नेहरु के शब्दो में - ''अंग्रेज भारत में प्रभुतवान होकर विश्व की अग्रगंम्य शक्ति ही इसलिए बन शके कि वे नवीन वृहदयंत्रमूलक औद्योगिक सभ्यता के अग्रदूत थे। वे उस नवीन इतिहासिक शक्ति के प्रतिनिधि थे जो विश्व में रुपान्तर लानेवाली थी और इस प्रकार वे, अपने आप से अज्ञात रुप में परिवर्तन और क्रान्ति के अग्रदूत और प्रतिनिधि हो गये ।''(50)

जब किसी अन्य जाति का आगमन होता है तब वह अपने साथ अपनी संस्कृति को भी साथ ले आती है। वैसे ही अंग्रेजोने जब अपना राज्य भारत में स्थापित कर दिया तो उनके साथ अंग्रेजी सभ्यता, अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी शिक्षा, उनका साहित्य और विचार का भी आगमन हुआ। इस तरह दो राष्टो में सांस्कृतिक आदान-प्रदान होने से भारतीयों में भी नवीन विचार और भाव पैदा हुए। भारत उनकी संस्कृति से भी परिचित हुआ। वर्ग, जाति, संप्रदाय और प्रान्त की संकीर्णता से भारत ऊपर उठा और भारतमें सामयिक, घार्मिक और राष्ट्रीय एकता की चेतना का आर्विभाव हुआ। चेतना की इसी लहर ने सभी पार्श्वो को छूआ। जिससे भारतीयों नवचेतना और नवजागरण का मानसिक क्रान्ति का आर्विभाव हुआ। ''शताब्दियों से अतीत को आँखो में मूंदे हुए निंद्रामग्न भारतीय समाज में एक जागरण, एक उत्थान दिखाई दिया और उसे अपने अतीत के निरीक्षण-परीक्षण की दृष्टि मिली। पुरातन श्रद्धा और आस्था के स्थान पर तर्क और विवेक प्रतिष्ठित हुए, अन्ध विश्वास और जड़ रूढ़ियों पर बुद्धि और विज्ञानने विजय पाई, थिरता और गतानुगति ने गति और प्रगति को आत्मसमर्पण किया एवं दासता और बन्धन में स्वतंत्रता और मुक्ति की भावना का अभिनंदन हुआ।''(51)

''जब युरोप भारत पहुँचा, उस समय यहां के लोग जीवन की सत्यता में प्रबलता से विश्वास करना छोड़ चुके थे। जीवन असत्य है , जीवन क्षणभंगुर है एवं मनुष्य का सबसे बड़ा काम अपने पर लोक की चिंता करना है, इस निवृत्तिवादी दर्शन का बीज पहले-पहले उपनिषदों में दिखाई पड़ा था। किन्तु जैन और बौद्ध मतो के दर्शन में यह बीज बढ़कर विशाल वृक्ष हो गया और कालक्रम में इस देश की जनता लोक को परलोक के सामने हीन मानने लगी।'' ''ऐसे अंघकार के समयमें प्रकाश फैकनेवाले स्वामी दयानंद और स्वामी विवेकानंद है। विवेकानंद ने यही बतलाया कि वेदान्त जीवन से भागने की प्रेरणा नहीं देता है बल्कि वह तो जीवन की कठिनाइयों को झेलने की शक्ति देता है। केशवचन्द्र सेन,

रामकृष्ण परमहंस, एनी बीसेन्ट, अरविंद, रानडे और गांधीजी ने उसी प्रकार की व्याख्या की है। किन्तु इस दिशामें हिन्दुत्व को माँझकार चमका देने का सबसे बड़ा कार्य लोकमान्य तिलकने किया, जिनका अलग ग्रंथ ''गीता रहस्य'' अथवा ''कर्मयोग शास्त्र'' अभिनव हिन्दुत्व का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ है।(52)

भारतीय सभ्यता छह हजार वर्ष प्राचीन है और घार्मिक संस्कार तो भारतीय जनता के अशिक्षित व्यक्ति को भी, बहुधा, पैतृक उत्तराधिकार के रुप में आप से आप प्राप्त हो जाते है। भारतीय अंग्रेजो के वैभव या बाहरी चमक से आकर्षित नहीं हुए बल्कि उन्होंने मनुष्य के शील का महत्व दिया है। इससे यही हुआकि ''आधिभौतिकता की टकराहट से भारतकी ऊँघती हुई बूढ़ी सभ्यता की नींद खुल गयी और वह भाव से अपने घर के सामानों पर नजर दौडाने लगी कि जो चीजे लेकर युरोप भारत आया है, वे हमारे घर में है या नहीं। भारतीय सभ्यता का यही जागरण भारत का नवोत्थान था।'(53)

''भारतीय नवोत्थान की घारा के क्रम में छोटे-बडे अनेक व्यक्तित्व उत्पन्न हुए है। यह घारा अब भी प्रवाहमें है और आज भी ऐसे व्यकितत्वों का आविर्भाव अवरुद्ध नहीं हुआ है। किन्तु इन सारे व्यकितत्वों के आघ्यात्मिक पिता राममोहन राय है।(54) ''इस नवोत्थान का आरंभ राममोहनराय, दयानन्द और विवेकानन्द ने किया था, और जिसकी घारा में हम आज भी तैरते हुए आगे जा रहे है, वेदान्त उस आंदोलन की रीढ़ है।(55)भारतमें घार्मिक सांस्कृतिक क्षेत्र में महाराष्ट्र के संत रामदास के पश्चात् कोई महा नेता इस देश में नहीं हुआ था। अंग्रेजी संस्पर्श की पहली प्रक्रिया गुजरात और बंगाल में हुई, और सांस्कृतिक जागरण भी बंगाल और गुजरात में ही पहले हुआ। बादमें अन्य प्रांतो में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ और वहाँ भी पुनरुत्थान का आंदोलन चला। बंगाल में पुनरुत्थान के नेता - राजा राममोहनराय, स्वामी दयानंद, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, केशनचंद्र सेन है। जबकी इस आंदोलन के कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर है।

प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी तरह अपने युग की परिस्थितयों से प्रभावित होता है। यदि वह व्यकित कवि का हृदय रखता है तो उसके सोचने समझने की सलाहियत एवम् विचार-शक्ति आम इन्सानों से दो कदम आगे होती है और उसकी कविताओं पर भी युग-विशेष का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रुपमें दिखाई पड़ता है। इसीलिए कहा गया है कि ''महाकवि युग-विशेष का वरदान होता है और इसी कारण साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है।(56) आलोच्य कवि गुप्तजी भी अपने युग की परिस्थियों से प्रभावित हुए है और उन्होने अपने काव्य में पौराणिक कथाओं को लेकर भी उसमें जो युग-विशेष के गीत गाए है। वह दृष्टिगत है।

'नवचेतना' की संघटनकारी शक्तियों का विश्लेषण और सांस्कृतिक आंदोलनो और नेताओं का संक्षिप्त परिचय -

ब्रह्म समाज :-

ब्रह्म समाज के आदि संस्थापक राजा राममोहनराय का जन्म 22 मई सन् 1772 ई. में बंगाल के राघानगर गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा अरबी, फारसी में हुई जिसके द्वारा उन्होंने इस्लाम घर्म के मूल सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त किया। बाद में काशी में जाकर वेदान्त दर्शन और सूफीमत का गहन अघ्ययन किया, जिसमें ब्रह्मवाद उनकी रग-रग में समा गया। सन् 1803 ई. में मुर्शिदाबाद से उन्होंने ''तरह तुल-मुनाहिद्दीन'' नामक एक पुस्तक फारसी में निकाली जिसमें उन्होने मूर्तिपूजा का खण्डन किया था, और एकेश्वरवाद तथा विश्वघर्म की आवश्यकता बतलाई थी। अरबी, फारसी के अलावा संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी और ग्रीक भाषाओके की धाता थे।

''भारतमें ईसाइयत का प्रचार, ईसाइयों के द्वारा भारतीय घर्मो की निंदा, युरोप के क्रांतिकारी बुद्धिवादी विचार और अंग्रेजी पढे-लिखे हिन्दुओं द्वारा हिन्दुत्व की मर्त्सना यु कुछ कारण थे जिनसे हिन्दुत्व की नींद टूटी। उसकी पहली अंगडाई ब्रह्म समाज में प्रकट हुई और उसके नवोत्थान के आदि पुरुष राजा राममोहनराय हुए।'' (57)

राजा राममोहनराय भारत के सामाजिक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सुघार-आंदोलनो के अग्रदूत बने और 19वीं शताब्दी के सभी मुख्य आंदोलनों की आघार शिला उनके विचारोने रखी थी। उनके चरित लेखक एन.सी.गांगुली के शब्दोमें ''वे नई स्फूर्ति के, उस अन्वेषण की लालसा के, उनकी ज्ञान-विज्ञान की पिपासा के, उसकी विशाल मानव-सहानुभूति के उसके शुद्ध और परिष्कृत नीति-शास्त्र के और अतीत के प्रति श्रद्धापूर्ण किन्तु समालोचनात्मक आदरभाव के मूर्त रुप थे।''(58)

अंग्रेजी सभ्यता के संस्पर्श से उनकी दृष्टि पाश्चात्य भाषा और साहित्य की और गई वे हिन्दु घर्म और भारतीयो को भी नवीन बौद्धिक (विज्ञान) से परिचित कराना चाहते थे। वे विश्व मानवतावाद के समर्थक थे और भारतीय संस्कृति का समन्वय पश्चिम के नवीन अनुसंघानो के साथ करना चाहने थे। उनकी जीवनी लेखिका मिस क्रालेटने लिखा है, इतिहास में राजा राममोहनराय का स्थान उस महासेतु के समान है, जिस पर चढकर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश करता है।(59) दिनकरजीने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है - प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मानवतावाद के बीच जो खाई है, अंघविश्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी है, स्वैच्छाचारी राजा और जनतंत्र के बीच जो

अन्तराल है तथा बहुदेववाद एवं शुद्ध ईश्वरवाद के बीच जो भेद है, उन सारी खाईयों पर पुल बांध कर भारत को प्राचीन से नवीन की और भेजने वाले महापुरुष राममोहनराय है। (60)

वे हिन्दुओं को एक नये घर्म के मंतव्यो से परिचित करना चाहते थे। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए उन्होने सन् 1815 ई. **आत्मीय सभा** की स्थापना की। इसके एक वर्ष बाद सन् 1816 ई. मे कलकत्ते में वेदांत कालेज की स्थापना की। आत्मीय सभा सन् 1819 ई. तक ठीक चली उसके बाद वह बंद हो गयी। तब उन्होंने युनिटेरियन सोसायटी के नाम से एक अन्य सभा की स्थापक की जो आत्मीय सभा का ही अंग्रेजी रुप थी। युनिटेरियन सोसायटी पर किस दृष्टि से विचार किया आए, इसका ठीक विश्चय नहीं हो सकता। कयोंकि इसके सदस्य अंग्रेज भी थे। इस पाश्चात्य सभा के कार्य सेभी राममोहन राय के हृदय को संतोष नहीं हुआ। वे हिन्दु-घर्म में सुघार लाना चाहते थे इसीलिए राममोहनराय ने एक एसी सभा स्थापित करने का विचार किया, जो शुद्धतः औपनिषदिक सत्योक्ष पर आघारित हो। तब उन्होंने 20 अगस्त, सन् 1828 ई. को उन्होंने **ब्रह्म समाज** की स्थापना कलकतेमें की। उसमें एक परमेश्वर की आराघना का विघान था अर्थात् भारतीय परंपरा के अनुसार यह अद्वैतवादी हिन्दुओं की संथा थी। यह सभी घर्मो के प्रति सहानुभूतिशील और उदार है ''ब्रह्म समाज के अधिवेशनो में वेद के मंत्रो का उच्चार, उपनिषदो के बंगला अनुवाद का वाचन, और बंगाला में उपदेश दिये जाते थे। ब्रह्म समाज में इस बात को प्रमुखता प्रदान की गई कि मन्दिर, मस्जिद, गिरजा सब में ब्रह्म स्थित है। वेद, कुरान, इंवील आदि सभी घर्म-ग्रंथो को समान- समान दिया गया और विश्व के सभी घर्म शिक्षको को सम्मान की दृष्टि से देखा गया।''(61)

इस संस्थामें सभी जाति के लोग हो शकते है - अर्थात् हिन्दु घर्म की बंधी बंधायी मर्यादा विस्तृत करदी गई। यह कहा जा शकता है कि राजा राममोहन राय ने बुद्ध के पश्चात् भारत वर्ष को इस अवस्था में रखा ताकि यह समूची मानव जाति को आघ्यात्मिक संदेश दे शके और निर्णयकारी राष्ट्रीय इतिहास की दौड़ आरंभ कर सके।(62) इस ब्रह्म समाज की स्थापना के केवल दो वर्ष बाद ही राजा राममोहनराय ब्रिस्टल गये। जहां से फिर लौटे नहीं। 27 सितम्बर, 1853 इ. को उनका अवसान हो गया।

राजा राममोहनराय के अनुयायी महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर लगभग दस वर्ष बाद सन् 1853 इं. में ब्रह्म समाज के नेता हुए। वे संत और रहस्यवाडी हिन्दु थे, किन्तु वे रुढिवाडी परंपरा के खिलाफ थे, वे घर्म का बुद्धिसमंत रुप संसार के सामने रखना चाहते थस। वेर और उपनिपदो पर उनका अचल विश्वास था। महर्षि देवेन्द्रनाथ के समय में आकर ब्रह्मो-समाज अपनी जड़ से दूर होने लगा। उन्होंन.

सांप्रदायिक ढंग से संगठन किया और उसके सिद्धांतो और उदेश्यो के प्रचार के लिए ''तत्व-बोधिनी'' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया तथा कुछ घर्म शिक्षक भी उन्होने इस कार्य के लिए नियुक्त किये। ''तत्व बोधिनी'' पत्रिका में यह स्पष्ट रुप से कहा गया है कि वेद औपरुषेय है और ब्रह्म-समाज के सिद्धांतो के मूलाधार वेद ही है। (63)

सन् 1857 ई. में केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म-समाज में प्रवेश किया । उनकी उम्र उन्नीस साल की थी । वे एक भावुक एवम् वाग्मी व्यक्ति थे । वे बड़े ही तेजस्वी, उत्साही एवम् मेघावी नवयुवक थे । उनका सामाजिक क्रांति के लिए पूरा उत्साह था। वे ईसा के परम भक्त थे और हिन्दू धर्म को भी वे ईसाइयत की दिशा में ले जाना चाहते थे । सन् 1865 ई. तक ब्रह्म समाज की 54 शाखाएँ देशभर में खुल गई थी । इसका श्रेय केशवचंद्र सेन को है । उन्होंने ब्रह्म समाज में भक्ति और वैष्णवों की संकीर्तन-प्रणाली दोनों को महत्व दिया । इसके साथ-साथ उन्होंने सभी धर्मो की उपासना को महत्व दिया । जिसके फलस्वरुप ब्रह्म समाज के प्रार्थना संग्रह में हिन्दू, बौद्ध, यहूदी, ईसाई, मुसलमान और चीनी आदि सभी धर्मो की प्रार्थनाएँ संमिलित है । इससे स्पष्ट है कि राममोहनराय, देवेन्द्रनाथ, केशवचन्द्र सेन आदि द्वारा हिन्दूओं के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में नवीन चेतना का प्रसार हुआ । इस समाज ने पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह एवं सती-प्रथा का विरोध किया और विधवा विवाह तथा अर्न्तजातीय विवाह को महत्व दिया । वास्तव में ब्रह्म समाज भारतीयों का राष्ट्रीय जागृति का प्रथम सुसम्बद्ध चरण था । इसने भारतीयों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता, पारस्परिक दायित्व एवं मिलकर काम करने की भावनाओँ का संचार किया ।(64)

इस प्रकार राजा राममोहनराय ने धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू धर्म को नवीन रुप दिया । धर्म के विषय में उनकी भावना अत्यंत व्यापक थी । साथ में सांस्कृतिक क्षेत्र में भी उन्होंने क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी । यद्यपि केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में आते-आते ईसाईयत का काफी प्रभाव होने के बावजुद ब्रह्म समाज ने समाज की दुर्बलताओं को दूर करके देश में एक नवीन स्फूर्ति का संचार किया है । विश्व विख्यात कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी ब्रह्म समाज एवं अपने पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर के ब्रह्मवाद, बुद्धिवाद, सर्व-धर्म समन्वय एवं विश्व बन्धुत्व के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे ।

प्रार्थना समाज :-

19 वीं सदी के हिन्दू-नवोत्थान की मूल-प्रेरणा सामाजिक थी, यद्यपि बंगाल में उसने धार्मिक रुप लिया था। जिस प्रकार बंगाल में हिन्दू-नवोत्थान के पहले नेता राजा राममोहनराय हुए, उसी प्रकार, महाराष्ट्र में नवजागृति का संदेश फैलाने के लिए प्रार्थना समाज की स्थापना हुई । और इस

आंदोलन का श्री गणेश महादेव गोविन्द रानाडे ने किया। बौद्धिक ऊँचाई में रानाडे प्रायः राममोहनराय के समकक्ष थे । उनकी मेघा, उनका ज्ञान और उनका पावनचरित्र, सबने मिलकर उनका देश के सर्वोच्च महापुरुषों में स्थान बनाया था । रानाडे के प्रिय शिष्य गोपालकृष्ण गोखले ने लिखा है - ''रानाड़े ने प्रायः तीन वर्ष तक भारतवर्ष के उँच्चे से ऊँचे विचारों तथा ऊँची से ऊँची आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व किया था ।''(65) प्रोफेसर कर्वे ने भी लिखा है कि कोई 22 साल तक पूने का सारा इतिहास रानाड़े के कृत्यों का ही इतिहास था ।(66)

रानाड़े का जन्म सन् 1842 ई. में नासिक जिले में हुआ था। वे जाति से चित्तपावन ब्राह्मण थे । वे साहित्य और अर्थशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। उनके हाथों अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ। स्व. सी.एफ.ऐन्द्रज के शब्दों में 'अनेक दृष्टियों से भारतवर्ष के नये सुधार आंदोलन का आविर्भाव बम्बई क्षेत्र में हुआ और उसका अत्यंत निकट का संगुफन रानाड़े के नाम के साथ रहा है ।''(67)

समाज सुधारक रानाड़े मानते थे कि सुधार का लक्ष्य मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए । वे राजनीतिक अधिकारों के उचित प्रयोग और सामाजिक व्यवस्था न्याय और सत्य पर आधारित हो उसके पक्षपाती थे । उनका दृढ़ विश्वास था कि कमजोर सामाजिक व्यवस्था द्वारा सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था का निर्माण असंभव है । धर्म के क्षेत्र में उच्चादर्श रखने वाले रानाड़े का स्पष्ट कहना था कि यदि सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में सफल होना है तो सबसे पहले हमारी धार्मिक भावनाओं का उच्च आदर्श होना जरुरी है । वे यह भी मानते थे कि समाज-सुधारक को कभी भी अतिथ से पूर्ण विच्छेद न करके उसकी पृष्ठभूमि में ही वर्तमान का कार्य करना चाहिए । इसीलिए लिखा है कि सच्चे सुधारक का कार्य कोरी स्लेट पर लिखना न होकर अर्धलिखित वाक्य को पूर्ण करना होता है ।''(71)

''रानाड़े ने प्रार्थना समाज द्वारा एक ब्रह्म की उपासना और प्राचीन धार्मिक मूल्यों तथा आदर्शो को आधुनिक युग के मूल्यों की भूमिका में अपनाने का महान संदेश अपने देशवासियों को दिया ।''(72) प्रार्थना समाज के मूख्य उद्देश चार थे ।(1) जाति प्रथा का विरोध (2) विधवा विवाह का समर्थन (3)स्त्री-शिक्षा का प्रचार और (4) बाल-विवाह का अवरोध । ब्रह्म समाज की भाँति यह भी मूर्ति पूजा अथवा परंपरागत धार्मिक अनुष्ठानों के परित्याग के आग्रह को नहीं रखा था । रानाड़े प्रार्थना समाज को सर्व-जन-ग्राह्य बनाना चाहते थे । सन् 1893 इ. लाहौर में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि - ''हिन्दू जनता इतनी बूरी नहीं है कि हम उसे सड़ाँध से भरा हुआ बर्बदियों का अम्बार कहें । यह जनता कुछ दूर तक कट्टर अवश्य है ,किन्तु इसी कट्टरताने उसकी रक्षा की है । जो जाति अपने

विश्वास और नैतिकता को, अपने आचारों और सामाजिक आचरणों को फैशन के समान आसानी से बदल दे , वह इतिहास में किसी बड़े उद्देश्य की प्राप्ति से वंचित रहेगी । साथ ही, यह भी सच है कि हमारी कट्टरता इतनी भयानक भी नहीं है कि हम नये विचारों और नूतन प्रयोगों को अपने भीतर धीरे धीरे नहीं पचा सकें ।''(70)

महाराष्ट्र में नवोत्थान के क्रम में विचारों के चार नेता उत्पन्न हुए । रानाड़े, गोखले, तिलक और आगरकर । आगरकर का प्रभाव अपने प्रांत तक सीमित था । रानाड़े, मुख्यतः समाज सुधारक थे किन्तु, गोखले और तिलक राजनीति के अग्रणी नेता हुए ।

संक्षेप में इस समाज ने पारस्परिक सौहार्द, सेवा-भावना, सामाजिक एकता, आस्तिकता आदि का अत्याधिक प्रचार किया । बंगाल की नवोत्थान प्रेरणा महाराष्ट्र में आकर अधिक सामाजिक हो गई , किन्तु सुधारकों की वैयक्तिक सीमाओं और परिस्थिति की प्रतिकूलताने उसे पूर्ण नहीं होने दिया। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि जिस भारतीय और हिन्दू राष्ट्रीयता का जयघोष तिलकने आगे चलकर किया उसका सांस्कृतिक धरातल रानाड़े ने पहले ही स्थगित कर दिया था ।

आर्य समाज :-

अपनी धर्म-सांस्कृतिक विशालता एवम् श्रेष्ठता और उसमें जागरण लाने का श्रेय स्वामी दयानंद सरस्वती कर रहे थे । राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता सामरिक तेज पहले पहल तिलक में प्रत्यक्ष हुआ, वैसे ही संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानंद में निखरा ।''(71) स्वामीजी का जन्म् 1824 में काठियावाड़ के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था । संस्कृत भाषा का अगाढ़ ज्ञान था । साथ ही वे प्रचंड तार्किक थे और ईसाई और मुस्लिम धर्म ग्रंथो का भी भली भाँति मंथन किया था। उन्होंने धर्म के प्रचार के लिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और फिर सन्यास ग्रहण किया। सन् 1872 ई. में स्वामीजी कलकत्ते गये थे । वहाँ देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेनने उनका बड़ा सत्कार किया । केशवचन्द्र सेन ने ही स्वामीजी को हिन्दी में बोलने को कहा था; तभी से स्वामीजी ने व्याख्यानों की भाषा हिन्दी में कर दी थी। कलकत्ते से बम्बई गए और वहीं पर 10 अप्रैल सन् 1875 में उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की । बम्बई से लौट कर वे दिल्ली आये और फिर दिल्ली से पंजाब गए । यहाँ भी सन् 1877 में आर्य समाज की संस्थापना की जिसे लाला हंसराज, स्वामी श्रद्धानंद और लाला लजपतराय का सहयोग प्राप्त हुआ ।

कुछ अर्थो में ''ब्रह्मसमाज'' से भी अधिक व्यापक धर्म - सांस्कृतिक जागरण लाने का श्रेय स्वामी दयानंद सरस्वती के धर्मसंघ 'आर्यसमाज' को है । इस शताब्दी में होनेवाले उत्तरापथ के

सामाजिक सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भूमिका आर्य समाज ने ही प्रस्तुत की ।[72] स्वामी दयानंद का आविर्भाव एक ऐसे समय में हुआ जब भारतीय धर्म और संस्कृति का ह्रास हो रहा था । भिन्न जाति के लोग इस्लाम और शिक्षित वर्ग अपनी इच्छा या अन्य प्रलोभनों से ईसाइयत की और आकर्षित थे । रोम्याँ रोला के अनुसार जिस समय दयानंद के मानस का विकास हो रहा था, भारत की उच्च धार्मिक आत्मा इतनी दुर्लभ हो रही थी कि यूरोप की धार्मिक प्रवृत्ति उसकी मंद ज्योति को बुझानेवाली थी, यद्यपि उसका स्थानापन्न नहीं दे सकती थी ।''[73]) ऐसे निराश और अंधकार समय में स्वामीजी ने हिन्दू जनता में पुनः नवीन उत्साह का संचार किया । रुढ़ियों और परंपराओं में फसे हुए भारतीयों की निंदा करते हुए कहा कि ''तुम्हारा धर्म पौराणिक संस्कारों की धूल में छीप गया है । इन संस्कारों की गंदी पर्त्तो को तोड़ फेंको । तुम्हारा सच्चा धर्म वैदिक धर्म है जिस पर आरूढ़ होने से तुम फिर से विश्व विजयी हो सकते हो ।''[74] ईसाई और मुसलमानों के पुराणों में भी वैसे ही दोष दिखलाए जो दोषों से वे हिन्दुत्व की निन्दा करते थे । इससे यह हुआ कि हिन्दु जनता को भी पता चला कि ईसाईयत और इस्लाम धर्म भी हिंदु धर्म से श्रेष्ठ नहीं है । बल्कि उसमें सभी धर्मो से अधिक शक्ति भी है । इससे वे अपनी प्राचीन परंपरा के लिए गौरव का अनुभव करने लगे । स्वामीजीने ''सत्यार्थ प्रकाश'' में केवल पौराणिक हिन्दू धर्म तथा हिन्दू समाज के अंध विश्वासों और अंधानुकरणों की ही खरी आलोचना नहीं प्रस्तुत की, वरन् कहीं अधिक कड़ी फटकार उन्होंने उस ईसाई पादरियों और मुसलमान मुल्लाओं को सुनाई जो निधड़क होकर हिन्दूत्व की अनर्गल रुप से निन्दा करते थे । यही ध्यान में रखते हुए पं. नेहरुने भी लिखा है कि आर्य समाज इस्लाम और ईसाई धर्म के प्रभाव की प्रतिक्रियात्मक शक्ति था ।

स्वामी दयानंद के शिष्य भी आगे बढ़े और उन्होंने घोषणा कर दी थी कि धर्मच्युत हिन्दू प्रत्येक अवस्था में अपने धर्म में वापस आ सकता है, अहिंदू थी हिन्दू धर्म में प्रवेश पा सकते है । ''यह केवल सुधार की वाणी नहीं थी, अपितु, यह जागृत हिन्दुत्व का समर नाद था । और सत्य ही, रणारूढ़ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानंद हुए , वैसा और कोई नहीं हुआ ।''[75] स्वामी जी विश्व मानवता के नेता है । उनका उद्देश्य सभी मनुष्य को सत्य की दिशा में ले जाना था । उन्होंने वेद अभ्यास पर प्रकाश डालते हुए हिन्दुत्व के आर्यत्व का प्रतिपादन किया । उन्होंने आगे भी कहा है कि ''मेरा कोई नवीन कल्पना व मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है ।किन्तु, जो सत्य है उसे मानना-मनवाना और जो असत्य है और उसे छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है । राम मोहनराय, रानाड़े, केशवचंद्र और तिलक से भिन्न स्वामीजी की विशेषता यह है कि उन्होंने धीरे धीरे पपड़ियाँ तोड़ने का काम न करके उन्हें एक ही चोट से साफ कर देने का काम किया । इसे क्रांति कह सकते है । इस तरह दयानंद क्रांति के वेग से आये और उन्होंने निश्छल भाव से घोषणा की कि हिन्दू धर्मग्रंथो में केवल वेद ही

मान्य हैं । वेदाध्ययन पर किसी एक वर्ग का आधिपत्य स्वीकार न करके वेदों को समस्त हिन्दू राष्ट्र की सामूहिक संपत्ति मानते थे । ''वेदो को सर्वजन सुलभ बनाने के लिए उन्होंने हिन्दी में वेदो की मौलिक एवं सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत की । इससे हिन्दूओं को वैदिक समाज और संस्कृति का ज्ञान हुआ और आर्य साहित्य की उच्च एवं उदार भावनाओं का परिचय मिला । इससे लोगों का विश्वास अटल हो गया कि वैदिक संस्कृति विश्व-संस्कृति का सर्वोच्च शिखर है जिससे उनके भीतर अतीत के प्रति असीम श्रद्धा और ममता के भाव जाग्रत हो उठे ।''(76) स्वामीजी ने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थो तथा अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं किया । उन्होंने नैतिक शिक्षा का प्रचार, विधवा-विवाह का प्रचलन, सामाजिक उपेक्षितों से प्यार, मानव में देव-दर्शन, कर्म को भाग्य का अग्रज, सुखी जीवन को स्वर्ग , दुखियापन को नरक, मूर्तिपूजा का खण्डन, समानता आदि बहुमुखी कार्यो में व्यापक सुधार किया और वे क्रांतिकारी बन गये । उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा प्रचार से जातीय गौरव के ह्रास का संकेत दिया था । अपनी संस्कृति में विश्वास और उसकी अभिव्यक्ति में देश भाषा का प्रयोग ने आत्म गौरव के साथ ऐक्य भाव पैदा करने में सहयोग दिया । स्वामीजी के अनुसार अंग्रेजी शासन कोई कितना ही कहे परन्तु जो संवेदनशील राज्य होता है वो सर्वोपरी उत्तम होता है ।

इस प्रकार ''आंरंभिक सुधारवादी आर्य समाजी आंदोलन परिस्थिति के आग्रह से राजनैतिक रुप में बदलने लगा - यह सत्य है । सामाजिक सुधार की अन्य सभी धाराएँ देश के राजनीतिक जीवन में बहनें लगी और यही कारण है कि भारत का राजनीतिक आंदोलन उसी नवचेतना का आवश्यक अंग है ।''(77) हिन्दुत्व की रक्षा हेतु जितनी मुसीबत आर्य समाजने झेली है उतनी किसी और संस्थाने नहीं । सुप्त हिन्दुओं को जागृति की प्रेरणा दी । उन्हें प्रगतिशील बनाया । उसका श्रेय आर्य समाज को है। आर्य समाज की प्रेरणा से ही हिन्दू जाति वैदिक धर्म की ओर आकर्षित हुई । वेद विरुद्ध कार्यो पर भी प्रकाश डालकर भारत की राष्ट्रीय जागृति में भी महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

पंडित चमूपति के अनुसार - ''आर्य समाज के जन्म के समय हिन्दू केवल फुसफुसिया जीव था । उसके मेरदण्ड की हड्डी थी ही नहीं । चाहे उसे कोई गाली दे, उसकी हंसी उड़ाये, उसके देवताओं की भर्त्सना करे या उसके धर्म पर कीचड़ उछाले - जिसे वह सदियों से मानता चला आ रहा है, फिर भी, इन सारे अपमानों के सामने वह दांत निपोरकर रह जाता था । लोगों को यह उचित शंका हो सकती थी कि वह आदमी भी है या नहीं, इसे आवेश भी चढ़ता है या नहि अथवा यह गुस्से में आकर प्रतिपक्ष की ओर घूर भी सकता है या नहीं, किन्तु आर्यसमाज के उदय के बाद, अविचल उदासीनता की यह मनोवृत्ति बिदा हो गई । हिन्दूओं का धर्म एक बार फिर झगमगा उठा है । आज वह हिंदु धर्म की निंदा सुनकर चुप नहीं रह सकता जरुरत हुई तो धर्म रक्षार्थ वह अपने प्राण भी दे सकता है ।''(78)

इस प्रकार राष्ट्रप्रेम, स्वतंत्रता-प्रेम, साहित्य तथा संस्कृति का पाठ पढ़ानेवाली उनकी संस्था 'आर्य समाज' का भारत के सांस्कृतिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है ।

ब्रह्मविद्या समाज :-

ब्रह्मविद्या समाज अर्थात थियोसाफिकल सोसायटी यह संस्था विदेश में ही जनमी थी । रुस की महिला हेलेना प्रेट्रोवना ब्लेवासी का परिचय न्यूयोर्क में आलंकाट साहब से हुआ और वहीं पर दोनों मिलकरके 7 सितम्बर 1875 में थियोसाफिकल सोसायटी की नींव रखी । इस संस्था का उद्देश्य था कि पूर्वी देशो धर्म और ज्ञान के तत्व हैं उनका प्रचार पाश्चात्य देशो में होना चाहिए । ''किन्तु इस संस्था का सबसे महान और उपयोगी उद्देश्य यह करार दिया गया कि विश्व मानवता के आविर्भाव और प्रचार के लिए यह दिखलाया जाय कि धर्म की भिन्नता से एक मनुष्य दूसरे से भिन्न नहीं हो जाता । सभी मनुष्य एक ही परम सत्ता से निकले हैं और सभी धर्मो के अच्छे लोग एक समान पवित्र है ।''[७९]

तिब्बत की संत आत्माओं से आमंत्रण 16 फरवरी सन् 1879 ई. में ब्लेवास्की और आलंकाट बम्बई आए जहाँ आर्या समाजने उनका भव्य स्वागत किया । आगे चलकर सन् 1882 ई. में थियोसाफि समाज का प्रधान कार्यालय अडयार (मद्रास) (चेन्नाई) स्थापित किया । आर्य समाज और थियोसाफि समाज के ध्येय अलग-अलग होने से वह स्थायी न रह सका। स्वामीजी सभी धर्मो का खण्डन करके वैदिक धर्म की पुनः स्थापना करना चाहते थे जबकि श्रीमती ब्लेवास्की और आलंकाट सब धर्मो में समन्वय कर विश्व बंधुत्व की स्थापना करना चाहते थे । कुछ दिनों बाद ब्लेवास्की बीमार होकर इंग्लण्ड चली गयी और नही लौटीं। इंग्लण्ड में उन्होंने ''द सिक्रेट डाकट्रीन'' नामक पुस्तक प्रकाशित की । इसी पुस्तक से प्रभावित होकर ही श्रीमती एनी बीसेंट थयोसाफी समाज में दिक्षित हुई । 19 नवम्बर सन् 1893 ई. में 46 वर्ष यह आयरिश महिला श्रीमती एनी बीसेंट भारत आई। सन् 1907 ई. में कर्नलेनल आलंकाट के देहान्त के पश्चात् श्रीमती एनी बेसन्ट ही सन् 1933 ई. तक थियोसाफी समाज की सभानेत्री रही । वे अपने को पूर्वजन्म की हिन्दू मानती थी । ''हिन्दू धर्म को वे विश्व के धर्मो में सबसे प्राचीन ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ मानती थी ।''[८०] वे हिन्दूधर्म के पुनरुत्थान में द्रढ़ विश्वास रखती थीं । हिन्दू धर्म पर लगाये गए मिथ्या आरोपो का खण्डन करके उसे श्रेष्ठता प्रदान की । कुछ समय तक उन्होंने इस संस्था के लक्ष्य की पूर्ति के लिए बनारस में सेंट्रल हिन्दू स्कूल की स्थापना की जो आज हिन्दू विश्वविद्यालय है । बनारस में रहकर ही उन्होंने गीता का अनुवाद किया । रामायण और महाभारत की संक्षिप्त कथाएँ लिखी । एवं हिन्दू धर्म तथा संस्कृति विषयक अनेक ओजस्वी भाषण दिये ।

श्रीमती एनी बेसंट अत्यन्त कुलीन वंश की अंग्रेज महिला थी। उनका अंग्रेजी भाषा पर असाधारण प्रभुत्व था । उनके भाषा का विषय हिन्दुत्व होता था । उनके मुख से निकला हुआ प्रत्येक वाक्य साहित्य का वाक्य होता था । काशी के प्रतिष्ठित पंडितने उन्हें 'सर्व-शुक्ला-सरस्वती' की उपाधि दे डाली थी । श्रीमती एनीबेसंट भारत और हिन्दुत्व को एकदूसरे का पर्याय मानती थी । अपने एक भाषण में उन्होंने हिन्दुओं से कहा था कि '' भारत और हिन्दुत्व की रक्षा भारतवासी और हिन्दू ही कर सकते है । हम बाहरी लोग आपकी जितनी भी प्रशंसा करे किन्तु आपका उद्धार आपके ही हाथ है । आप किसी प्रकार के भ्रम में न रहे । हिन्दुत्व के बिना भारत के सामने कोई भविष्य नहीं है ।''[81] श्रीमती एनी बेसंट ने भारत में ही हिन्दुओं को जगाया है ऐसा नहीं, उन्होंने यूरोप, अमेरिका, ओस्ट्रेलिया जाकर भी वहाँ के लोगों को हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा बताई ।

ब्रह्मसमाज ईसाईयत की ओर झुक गया था । उसी प्रकार आर्यसमाज भी प्रचलित हिन्दूत्व से भिन्न दिखाई पड़ता था । उस समय थियासाफी समाज इस बात में विश्वास करते थे कि सभी ईश्वर की संतान है, अतः सभी समान है और ईश्वर सब पर समान रुप से कृपा रखता है। स्वामी रामदास गौड़ ने उचित ही लिखा है कि - ''पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से जिनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया था परन्तु अपने विचारों के कारण न तो ब्रह्म समाजी हो सकते थे, क्योंकि पुर्नजन्म, वर्णाश्रम विभाग आदि को ठीक मानते थे और न आर्य समाजी हो सकते थे, क्योंकि और मतों का खण्डन उन्हें पसंद न था ; ऐसे हिन्दूओं की एक भारी संस्था थी, जिसने थियोसाफिकल सोसायटी को अपनाया और उसमें अपनी सत्ता बिना खोए हुए शामिल हो गए ।''[82]

वस्तुतः यह आंदोलन धार्मिक सहिष्णुता, समस्त धर्मो के समान तत्वों में एकता का विश्वासी, विश्व बंधुत्व, पारलौकिक क्रियाओं की खोज एवं तुलनात्मक धार्मिक रुप, मानव मात्र की समानता, सेवा एवं विश्व-कल्याण, आदि उद्देश्यो से प्रेरित अन्तराष्ट्रीय समाज के लिए आंदोलन था ।[83] सन् 1914 ई. उन्होंने एक भाषण में कहा था कि ''चालीस वर्ष के सुगंभीर चिन्तन के बाद मैं यह कह रही हूँ कि विश्व के सभी धर्मो में हिन्दू धर्म से बढ़कर पूर्ण वैज्ञानिक, दर्शनयुक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और धर्म कोई नहीं है ।''[84]

सन् 1914 ई. से उन्होंने भारत की राजनीति में भी भाग लेने लगी । तीन-चार साल तक भारत में परम मंत्रदातृ रहीं एवम् इस सुप्त देश की राजनैतिक चेतना को जगाया। कहा जाता है गांधीजी के आविर्भाव के लिये जमीन तैयार करनेवालों में एक अमर नाम उनका भी है । अर्थात गांधीजी के ही

शब्दों में कहे तो ''जब तक भारतवर्ष जीवित है , एनीबेसंट की सेवाएँ भी जीवित रहेंगी, जो उन्होंने इस देश के लिए की थीं । उन्होंने भारत को अपनी जन्मभूमि मान लिया था। उनके पास देने योग्य जो कुछ भी था उन्होंने भारत के चरणों पर चढ़ा दिया था, इसीलिए भारतवासियों की दृष्टि में वे उतनी प्यारी और श्रद्धेया हो गयीं ।''[84] यद्यपि ब्रह्म विद्या समाज ने भारतीयों में आत्म सम्मान, अतीत के प्रति स्वाभिमान और भविष्य में विश्वास उत्पन्न करने की अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय दिया था।[86] 19 वीं सदी में भारत में तीन धर्म आपस में बुरी तरह टकरा रहे थे । ऐसे समय में अर्न्तराष्ट्रीय आंदोलन का भारत में आना, सभी धर्मो में एकता स्थापित करना एवम् सांस्कृतिक पुनर्जागरण में सहयोग देना - इस द्रष्टि से थियोसाफिकल सोसायटी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। क्योंकि इस समाजने सभी धर्मो के बीच एकता स्थापित करके उनके बीच जो द्वेषभाव है वह मिट जाय उस पर ज़ोर दिया है । विश्वबंधुत्व, तुलनात्मक धर्म और परलोक विद्या का संधान, ये तीन उद्देश्यों को महत्व दिया है । डा. भगीरथ मिश्रने अनुरुप लिखा है कि ''राष्ट्रीयता का विकास भारतीय आध्यात्मिकता का नवोत्थान इस ब्रह्म विद्या समाज के द्वारा निश्चय रुप से हुआ । यद्यपि इस समाज का नाम और उत्पत्ति विदेशी है ।''[87]

रामकृष्ण मिशन :-

जैसे जैसे समय बीतता चला गया वैसे वैसे भारतीय जीवन में धार्मिक तथा सामाजिक आंदलनों से नवीन उत्साह एव अद्‌भुत जागृति आने लगी। भारतीय अपने धर्म का वास्तविक रुप की पहचान एवम् उसका परिचय चाहते थे । स्वामी दयानंद, राजा राममोहनराय तथा एनी बीसेन्ट ने यह सिद्ध किया कि हिन्दू धर्म निन्दनीय नहीं है। पर उसका वास्तविक स्वरुप दिखलाने वाले चैतन्य महाप्रभु के मार्गानुयायी भक्त परमहंस रामकृष्ण थे । आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज बड़े ही प्रबल सांस्कृतिक आंदोलन होते हुए भी उनमें कुछ कमजोरियाँ थी। इन समाजो के द्वारा हिन्दूत्व की रक्षा बौद्धिक धरातल पर होती रही । सामान्य जनता को तर्क शक्ति प्रदान की जो कि बुद्धि की क्रिया थी, जबकि उनमें 'विश्वास' रमा हुआ था जो आत्मा की प्रतिक्रिया है । इस तर्क और विश्वास के संघर्ष से उपेक्षित वास्तविक धर्म की व्याख्या चैतन्य महाप्रभु के मार्गानुयायी भक्त परमहंस रामकृष्ण (1836-1886) के आगमन से हुई ।

रामकृष्ण को किसी भी धर्मवालों के प्रति कोई आक्रोश नहीं था । परमहंस रामकृष्ण अनुभूतियों के आगार थे। और जिसे अनुभूति प्राप्त हो जाती है, ज्ञान का द्वारा उसके सामने स्वयं उन्मुक्त हो जाता है। हिन्दू-धर्म की रुढ़िया एवं अंधविश्वास, ईसाईयों के द्वारा निरंतर की जानेवाली हिन्दुत्व की निन्दा, अंग्रेजी पढ़े लिखे समाज में नास्तिक और आस्तिक का प्रचार आदि इन सब बातों का संधान सुधारकों ने किया, किन्तु वास्तव में धर्म की व्याख्या रामकृष्णने की कि हिन्दुत्व की मूलाधार विद्या और ज्ञान नहीं, सीधी अनुभूति है और यह रामकृष्ण के आगमन से ही धर्म की अनुभूति प्रत्यक्ष है।

जब आस्तिक और नास्तिक हिन्दू, ईसाई और मुसलमान आपस में लड़ रहे थे कि किसका धर्म श्रेष्ठ है तब उन्होंने ''सभी धर्मो के मूलतत्वों को अपने जीवन में साकार करके, मानों, सारे विश्व को यह संदेश दिया कि धर्म को शास्त्रार्थ का विषय मत बनाओं । हो सके तो उसकी सीधी अनुभूति के लिए प्रयास करे । सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जानेवाले अनेक मार्ग है और जो उनका उपदेश था उसे उन्होंने अपने जीवन में उतारा ।''[88] उन्होंने वैष्णव, शैव, शाक्त, तांत्रिक, अद्रैत, इस्लाम, बौद्ध, ईसाई आदि विभिन्न साधनाओं के प्रयोग से यह सत्य प्रकाशित किया कि सभी धर्मो में अनेकता बीच में उसके मूल धर्म में एकता है । साधन और मार्ग अनेक है । ''रामकृष्णजी का आध्यात्मिक द्रष्टिकोण समकालीन धार्मिक सुधारकों के विपरित पश्चिमी संस्कृति की प्रतिक्रिया से उत्पन्न नहीं है, वह धार्मिक संकीर्णता के विरोधी थे ।[89] गांधीजी के शब्दों में उनकी जीवनी व्यवहार में आये हुए जीवित धर्म की कहानी है ।''[90]

परमहंस रामकृष्ण हिन्दुत्व की समग्रता के प्रतिनिधि थे। उनको द्रव्य के प्रति वितृष्णा थी । एक सन्यासी होते हुए भी गृहत्याग नहीं किया था। कामिनी और कंचन से ही महापुरुषों की परीक्षा की जाती है । उन्हें इसमें भी सफलता प्राप्त हुई । प्रतिभा पूजन के साथ ईश्वर की आराधना भी करते । उनका व्यक्तित्व सरल और सहज था । वे बुद्धि से दूर रहनेवाले शील सदाचार के समर्थक तथा भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमा है । उनका आध्यात्मिक द्रष्टिकोण धार्मिक संकीर्णता के विपक्ष में रहा है। आचार्य प्रतापचंद्र मजमुदार के शब्दों में - ''श्री रामकृष्ण के दर्शन होने से पूर्व, धर्म किसे कहते है, यह कोई समझता भी नहीं था। सब आडम्बर ही था । धार्मिक जीवन कैसा होता है, यह बात रामकृष्ण की संगति का लाभ होने पर जान पड़ी ।''[91]

रामकृष्णजी की श्रद्धा सभी देवों के प्रति समान रहीं है । ''वे (रामकृष्ण) राम की पूजा करते हैं, शिव की पूजा करते हैं, काली को पूजते हैं और साथ ही वेदान्त में भी उनका अडिग विश्वास है। वे प्रतिमा पूजक है । किन्तु निरंजन और निराकार की पूर्णता का ज्ञान कराने में भी उनसे बढ़कर कोई और माध्यम नहीं हो सकता । उनका धर्म आनंद है, उनकी पूजा समाधि है । अहर्निश उनका समस्त अस्तित्व एक विचित्र विश्वास और भावना की ज्वाला से प्रदिप्त रहता है ।''[92] उनमें हिन्दू धर्म और दर्शन के सभी रुप समाहित होने से जो कोई उनके संपर्क में आता अत्यन्त प्रभावित होता । नेहरुजीने लिखा है ''जिस किसीने उनको देखा उस पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ी और अनेकानेक जिन्होंने उन्हें कभी नहीं देखा था उनकी जीवन कथा से प्रभावित हुए ।''[93] उनके दिवंगत होने के बाद उनके शिष्य विवेकानंद ने उनके उपदेशों का देश-विदेश में प्रबल प्रचार किया, और अपने गुरु के नाम

पर ही रामकृष्ण मिशन की स्थापना की । इस मिशन के अनेक केन्द्र भारत तथा अमेरिका में स्थापित किए गए । रामकृष्ण के जीवन में सत्य साकार होते ही, धर्म का सारी उपलब्धियाँ उन्हें अपने आप प्राप्त हो गई थी । उन उपलब्धियों के प्रकाश में ही विवेकानंद ने भारत और समग्र विश्व के समस्याओं पर विचार किया, और उनके दिये हुए समाधान भी रामकृष्ण के ही दिये हुए समाधान है। दिनकरजीने लिखा है ''रामकृष्ण अनुभूति थे, विवेकानंद उनकी व्याख्या बनकर आये । रामकृष्ण दर्शन थे, विवेकानंद ने उनके क्रियापक्ष का आख्यान किया । स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण को हिन्दूधर्म की गंगा कहा है जो वैयक्तिक समाधि के, कमंडलु में बंध थी। विवेकानंद इस गंगा के भगीरथ हुए और उन्होंने देवसरिता को रामकृष्ण के कमंडलु से निकाल कर सारे विश्व में फैला दिया ।(94)

स्वामी विवेकानंद का असल नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनका जन्म 12 जनवरी सन् इ. 1862 को कलकत्ते में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ । बी.ए. की उपाधि प्राप्त की थी और साथ में कुश्ती, बाक्सिंग, दौड़, घुड़दौड़ और तैरना सभी के प्रेमी थे, संगीत प्रेमी के साथ-साथ तबला बजाने में भी उत्साद थे और संस्कृत, अंग्रेजी के प्रकांड पंडित थे । प्रारंभ में वे नास्तिक थे किन्तु स्वामीजी के संपर्क में आने के कारण और उनसे प्रभावित होने के कारण वे आस्तिक हो गये । उनके भाषण प्रभावशाली और आत्मिक चेतना को जागृत और प्रेरणा प्रदान करने वाले होते थे। सन् 1893 इ. में उन्होंने शिकागो के सर्वधर्म संमेलन में भाग लिया। इस संमेलन में उन्होंने जिस ज्ञान, उदारता, विवेक और वाग्मिता का परिचय दिया उससे सभी लोग मंत्रमुग्ध हो गये थे, क्योंकि हिन्दुत्व के पक्ष में ऐसा ऊँचा प्रचार पहले कभी नहीं हुआ था। उनकी तेजस्विता से प्रभावित होकर हाडवर्ड विश्व विद्यालय के सुविख्यात प्रो.जे.एच.राइटने कहा है कि ''आपसे परिचय पत्र के लिए पूछना वैसा ही है जैसा कि सूर्य से यह पूछना कि तुम्हारा चमकने का क्या अधिकार है ।''(95) और उनके भाषणों पर टिप्पणी करते हुए द न्यूयोर्क हेराल्ड ने लिखा कि ''धर्मो की पार्लामेन्ट में सबसे महान व्यक्ति विवेकानंद है । उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसे ज्ञानी देश को सुधारने के लिए धर्म - प्रचारक भेजने की बात कितनी बेवकूफी की बात है ।''(96) सर्वधर्म संमेलन से उत्साहित स्वामीजीने अमेरिका और इंग्लैण्ड का प्रवास तीन साल तक किया । और इस समय में भाषणों, वार्तालापों, लेखों, कविताओं, विवादों और वक्तव्यों के द्वारा हिन्दु धर्म के सार को समग्र यूरोप में फैला दिया । यहाँ तक कि जब भारतवासियों ने सुना कि यूरोप के लोग भी स्वामीजी के मुख से हिन्दुत्व का आख्यान सुनकर गद् गद् हो जाते है तो उन्हें अपने धर्म और संस्कृति पर गौरव का अनुभव हुआ । और उनके भीतर ग्लानि की भावना उत्पन्न हुई कि पश्चिमी लोग भी स्वामीजी के शिष्य बनकर हिन्दूत्व की सेवा में लगे है । इस प्रकार ''हिन्दूत्व के लीलने के लिये, अंगरेजी भाषा, ईसाई धर्म और यूरोपीय बुद्धिवाद के पेट से जो तूफान उठा था, वह

स्वामी विवेकानंद के हिमालय जैसे विशाल वक्ष से टकराकर लौट गया ।''[97] इसलिए पं. नेहरुजीने लिखा है कि निराश एवम् पतित हिन्दू अस्तित्व के लिए एक 'टानिक' बनकर आये थे । उन्होंने इसमें आत्मविश्वास तथा अतीत के प्रति आस्था उत्पन्न की ।[98]

स्वामी विवेकानंदने शताब्दीयों से सोई हुई हिंदू जनता को कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का अमर संदेश दिया। भारत की पराधीनता देखकर कहा कि ''दीर्घ रजनी अब समाप्त हुई जान पड़ती है । महादुःख का प्रायः अन्त ही प्रतीत होता है । महानिद्रा में निद्रित शव मानों जागृत हो रहा है ।.....अब कोई उसकी उन्नति को रोक नहीं सकता । यह अब और नहीं सोयेगी । कोई बाह्य शक्ति इस समय इसे दबा नहीं सकती ।''[99] उन्हें अपनी मातृभूमि के लिए गर्व था उनका कहना था कि ''हमारी मातृभूमि दर्शन, धर्म, नीति, विज्ञान, मधुरता, कोमलता, अथवा मानवजाति के प्रति अकपट प्रेम रुपी सद्गुणों की प्रसविनी है । ये सब बातें अभी भी भारत में विद्यमान हैं । मुझे इस सम्बन्ध में जो जानकारी है, उसके बल पर द्रढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि भारत इन सब बातों में पृथ्वी के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।''[100]

स्वामीजी की व्यावहारिकता वह थी कि उन्होंने यूरोप और अमेरिका को संयम और त्याग का महत्व समझाया और भारतवासियों को हिन्दू धर्म की कुरीतियों, कुप्रथाओं एवम् बाह्याडाम्बरों का खण्डन किया। वे मानते थे कि अंधविश्वास आध्यात्मिक जीवन के लिए बाधा ही है। जाति-पाति, छूआछूत, ऊँच-नीच का भेद आदि पर व्यंग्य करते हुए कहा था कि ''हमारा धर्म चूल्हें-चौके में है, भोजन बनाने का बर्तन हमारा ईश्वर है ; और हमारा वर्ग है - मुझे स्पर्श न करो, मै पवित्र हूँ ।''[101]

स्वामीजीने धर्म की व्याख्या की । ''धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवत्व का विकास है । धर्म न तो पुस्तकों में है, न धार्मिक सिद्धांतो में । वह केवल अनुभूति में निवास करता है । धर्म अन्ध विश्वास नहीं है। धर्म अलौकिकता में नहीं है, वह जीवन का अत्यंत स्वाभाविक तत्व है ।''[102]

स्वामीजी ने कहा करते थे कि भारत का कल्याण शक्ति की साधना में है । और शक्ति का उपयोग केवल कल्याण के निमित होना चाहिए । यह कान्त द्रष्टा युवक थे । राजनीति में भाग न लेकर उन्होंने स्वतंत्रता, समानता एवम् सामान्यजन के आत्मिक स्तर को उपर उठाने पर अधिक जोर दिया । उनका कहना था कि जीवन को उच्च और उन्नत बनाने के लिये विचार और कार्य की स्वतंत्रता का होना नितान्त अवश्य होता है। इन तत्वों के अभाव में कोई भी मनुष्य या जाति या राष्ट्र ऊपर नहीं उठ पाता है ।[103]

विवेकानंदजी की मान्यता थी कि यह विश्व किसी बाह्य इश्वर की कृति नहीं हैं और न वर किसी बाह्य प्रतिभा का ही चमत्कार है । वह तो स्वयं भू, लयशील और स्वयं प्रकाशी, अद्रैत असीम सत्ता ब्रह्म ही है । स्वामी जी अद्रैत वेदान्ती थे । और उनका द्रढ़ विश्वास था कि वेदान्त ही भावी मानव-जाति का धर्म हो सकता है । सत्य तो यह है कि ''अद्रैतवाद'' ही धर्म और चिन्तन का चरम संदेश है । यही एक स्थिति है जहाँ से समस्त धर्मो और संप्रदायों के प्रति प्रेम-द्रष्टि डाली जा सकती है । व्यावहारिक अद्रैतवाद समग्र मानवता को आत्मवत देखने का संदेश देता है ।

स्वामीजी स्वयं सन्यासी थे । उनका विचार था कि '' मैं सन्यासी और गृहस्थ में कोई भेद नहीं करता । सन्यासी हो या गृहस्थ, जिसमें भी मुझे महत्ता, हृदय की विशालता और चरित्र की पवित्रता का दर्शन होते हैं, मेरा मस्तक उसीके सामने झुक जाता है ।''[104] सन्यासी होने के कारण वे जीवन में अनुभव को सिद्धांतो से अधिक महत्व प्रदान करते थे । उनका विचार था कि ''सन्यासी का कोई मत या संप्रदाय नहीं हो सकता क्योंकि उनका जीवन स्वतंत्र विचारों वाला होता है और वह सभी मत-मतांतरो से उसकी अच्छाइयां ग्रहण करता है । उसका जीवन अनुभव का होता है न की केवल सिद्धान्तों अथवा रुढ़ियों का''[105] स्वामीजीने पूर्ण रुप से प्रवृत्ति और निवृत्ति को जीवन का अंतिम सोपान माना है । उन्होंने कहा है कि ''उस त्याग का भला अर्थ ही क्या होगा ? यदि अंधकार ही न हो तो प्रकाश का अर्थ ही क्या ?''[106] स्वामीजी आत्म शुद्धि और आत्म-विकास के लिए दुःख को महत्वपूर्ण मानते थे क्योंकि दुःख से ही मनुष्य के भीतर सहानुभूति और सहिष्णुता का विकास होता है । वे शैव, विष्णु, गिहोवा, अल्लाह और ब्रह्म में सब एक ही ईश्वर के भिन्न-भिन्न नाम रुप मानते थे ।

प्राचीन हिन्दू सभ्यता और पश्चिमी सभ्यता दोनों में से भारतीय सभ्यता का आदर्श स्थापित करते हुए भारतीयों को बताया कि भारत विश्व का धर्मगुरु रहा है । उन्होंने ये भी कहा है कि ''भारत के धर्मो को साथ लेते हुए युरोपीय समाज का निर्माण करो ।''[107] उन्होंने भारतीयों को बताया कि ''विश्व में यदि कोई पाप है तो वह दुर्बलता ही है, अतः उसका त्याग करो । दुर्बलता ही पाप और मृत्यु है ।''[108] स्वामीजी सत्य पर अधिक जोर देते थे क्योंकि सत्य सदैव पवित्र ज्ञान प्रदान करनेवाला एवं शक्तिशाली होता है ।

स्वामी विवेकानंद का देहांत केवल 39 वर्ष की आयु में हो गया था । किन्तु इस छोटी सी अवधि में ही बड़े-बड़े कार्य संपन्न किये । दिनकरजीने लिखा है कि - ''राम मोहनराय के समय से भारतीय संस्कृति और समाज में जो भी आंदोलन चल रहे थे, वे विवेकानंद ने आकर अपनी चरम सीमा पर पहुँचे । राममोहन, केशवसेन, दयानंद, रानाड़े, एनीबेसंट, रामकृष्ण एवम् अन्य चिन्तकों तथा

सुधारकों ने भारत में जो जमीन तैयार की, विवेकानंद उसमें अश्वत्थ होकर उठे । अभिनव भारत को जो कुछ कहना था वह विवेकानंद के मुख से उद्‌गीर्ण हुआ । विवेकानंद वह समुद्र है, जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तराष्ट्रीयता तथा उपनिषद और विज्ञान, सबके सब समाहित होते है ।''[109] रविन्द्रनाथ ने कहा है ''यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे विवेकानंद को पढ़ना चाहिए ।''[110] अरविंद का वचन है कि भारत केवल मृत्यु से बचने को नहीं जगा है, वरन्, वह विश्व-विजय करके दम लेगा ।'' और नेताजी सुभाषचंद्र ने लिखा कि ''स्वामी विवेकानंद का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था ।''[111]

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक :-

यूरोपीय सभ्यता और विचारधारा से भारत का जो संपर्क हुआ उसका सबसे कल्याणकारी प्रभाव प्रवृत्ति की दिशामें पड़ा। प्रवृत्तिवादी विश्व को निरसार न मानकर वह मनुष्य-जीवन का चरम लक्ष्य, ध्यान और समाधि है । 19 वीं सदी में जो सांस्कृतिक नवोत्थान हुआ उस नवोत्थान के सभी नेताओं ने प्रवृत्ति का मार्ग अपनाया है । स्वामी विवेकानंद वेदान्त और कर्मनिष्ठा के समर्थक थे किन्तु इस दिशा में दर्शन के स्तर पर सहसे बड़ा काम लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने किया । उनका प्रवृत्ति मार्ग के आधार पर गीता के उद्देश्य अनुसार ही (गीता-विषयक ग्रंथ) ''कर्मयोगशास्त्र'' नामक ग्रंथ दिखाई देता है । यह ग्रन्थ हिन्दूत्व की उस अवस्था का परिचायक है , जब कि यूरोपीय संस्कृति की टकराहट से उठने वाला कंपन समाप्त हो जाता है । एवम् हिन्दूत्व नवीन जन्म ग्रहण करके अपने अनुयायियों को नई परिस्थितियों से लौटा लेने का उपदेश देता है ।''[112] वास्तव में, राजा राम मोहनराय से लेकर विवेकानंद तक, भारतीय दर्शन में जो विपुल मंथन हुआ था, कर्म-योग-शास्त्र उसीका चरम स्वरुप है ।

वैदिक युग में प्रवृत्ति का प्राधान्य था किन्तु उपनिषदों के युग में निवृत्ति मार्ग को प्रमुखता थी । जैन और बौद्ध धर्मो में भी निवृत्ति मार्ग को सर्वश्रेष्ठ माना था। आगे चलकर आधुनिक काल में स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक प्रभृति विद्वानोंने एक बार पुनः प्रवृत्ति मार्ग की प्रतिष्ठा की ।

स्वामी विवेकानंद और तिलकजी समकालीन थे । विवेकानंद का उद्देश्य मनुष्य मनुष्य से समीत लाकर विश्व-मानवता को जन्म देना था । किन्तु, ''तिलकजी प्रधानतः समाज और राजनीति के पुरुष थे तथा विश्ववाद से उन्हें अधिक प्रेम नहीं था। वे हिन्दूओं की पतनशीला से दुःखी थे । वे पराधीनता से क्षुब्ध थे । अतएव गीता की व्याख्या के बहाने उन्होंने समस्त हिन्दू दर्शन को मथ कर उसे नवीन कर दिया तथा हिन्दू ज्ञाति में वह प्रेरणा भर दी जिससे मनुष्य प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय

पाता है , जिससे कर्तव्या-कर्तव्य के निश्चय में दार्शनिक सूक्ष्मताएँ उसके मार्ग का अवरोध नहीं कर सकतीं, तथा जिससे जड़ परिस्थितियों के अनुसार धर्माधर्म का ठीक-ठाक समाधान कर पाता है ।[113]

शंकराचार्य और उनके बाद भी, गीता पर कई टीकायें लिखी गयीं, किन्तु किसीकी भी टीका में गीता प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देती या ये नहीं कहा कि गृहस्थ के कर्म भी धार्मिक कर्म हो सकते हैं किन्तु लोकमान्य तिलक ने अपने गीता रहस्य में अत्यन्त वैज्ञानिक पद्धति से प्रवृत्ति धर्म को गीता का प्रधान विषय बनाकर व्याख्यायित किया और हिन्दूओं के भीतर नई मानसिकता उत्पन्न की। तिलकजीने कहा कि संसार का त्याग करने के लिए गीता नहीं कही गई है । गीता की रचना यह इंगित करने के लिये हुई है कि मोक्ष द्रष्टि से संसार के कर्म किस प्रकार किये जावें और तात्विक द्रष्टि से इस बात का निर्देश करे कि संसार में मनुष्य मात्र का सच्चा कर्तव्य क्या है ?[114] इस तरह व्यवहार और धर्म में जो द्वंद्व हिन्दूओं के मन में होता था उसे तिलकजीने कर्मयोग शास्त्र के द्वारा उनकी द्विधा को दूर कर उन्हें द्वंद्व के समय वे धर्म का व्यवहारिक पक्ष का सहारा ले सकें, उनके योग्य बना दिया । तिलकजी नेही गीता में योग का अर्थ कर्म है ये बताया है ।

तत्कालीन समाज तिलकजी के अपूर्व व्यक्तित्व एवं विद्वता से प्रभावित हुआ है । देश के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में कर्मवाद की महत्ता रही है । ''वस्तुतः भारतीयों में स्वतंत्रता के प्रति जो आकुल प्रयत्न और छटपटाहट तथा विद्रोह एवं क्रान्तिकारी भावनायें तत्कालीन समाज एवम् साहित्य में दिखाई देती है उसके जनक निश्चय ही तिलकजी माने जायेगें ।''[115] तिलकजी ने ही **''स्वाधीनता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है''**, का नारा बुलन्द करके भारतवासियों को देश के प्रति नवीन उत्साह एवं प्रेरणा का संचार किया था ।

महायोगी अरविन्द :-

हिन्दु नवोत्थान में महायोगी अरविंद का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है । वे स्वयं कवि थे अतः उनके दर्शन में अनुभूति का योग भी है । वे आध्यात्मिक या पराशक्ति के स्तर पर मुक्ति की खोज करते है । आरंभ में, वे अंग्रेजी के कवि और चिन्तक तथा देश के प्रतापी राजनीतिक नेता थे । वे तेजस्वी पत्रकार भी थे । उनके 'वन्देमातरम् ' नामक पत्र ने देश के भीतर उग्र राष्ट्रीयता के उद्बोधन में अद्भुत काम किया था।

अरविंद ने कहा कि सारे संसार में परिवर्तन हो रहा है वैसे ही भारत में भी पूराने विचार और पूरानी संस्थाएँ टूटती जा रही है और वह भी प्रगतिशील हो रहा है, अर्थात भारत में परिवर्तन होगा । उनका मत है कि भारत भौतिक समृद्धि से हीन है, यद्यपि उसके जर्जर शरीर में आध्यात्मिकता का

तेज वास करता है । यह देश यदि पश्चिम की शक्तियों को ग्रहण करे और अपनी शक्तियों का भी विनाश नहीं होने दे, तो उसके भीतर से जिस संस्कृति का उदय होगा वह अखिल विश्व के लिये कल्याणकारिणी होगी । वास्तव में वही संस्कृति विश्व की अगली संस्कृति बनेगी ।[116] उनका विश्वास है, जिस प्रकार भूत से जीवन और जीवन से मानस की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार, मानस से अब अतिमानस का विकास होना चाहिए ।[117] अतिमानस की सार्थकता यह होगी कि मनुष्य सोचने में गलती नहीं करेगा, अथवा उसका प्रत्येक ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान का रुप ले लेगा जिससे मन को भूल करने का अवसर हीं नहीं मिलेगा । इसीलिए अरविंद कहते हैं, ''व्यक्तियों में सर्वथा नवीन चेतना का संचार करो ; उनके अस्तित्व के समग्र रुप को बदलो जिससे पृथ्वी पर नये जीवन का समारंभ हो सके ।''[118]

वे मानते थे कि विज्ञान मनुष्य को भौतिक समृद्धि दे सकता है किन्तु आंतरिक संतोष देने में वह असमर्थ है । वे मानवता की बौद्धिक समस्याओं का समाधान इस प्रकार देते हैं कि मनुष्य जिस बौद्धिक स्तर पर बैठा हुआ है उससे ऊपर उठकर वह एक नयी भूमि पर अवस्थित होने का प्रयास करे जो अतिमानस की भूमि है । जब मनुष्य पूर्ण रुप से अतिमानस की स्थिति तक पहुँच जाता है तब बुद्धि की अज्ञानता दूर हो जाती है । ''मस्तिक से ऊपर अतिमानस का देश है जब तक मनुष्य इस देश में पाँव नहीं रखता, उसका कल्याण नहीं होगा ।''[119] इस तरह अरविंद मानवता के नवनीत और विश्व-विचारों के स्तंभ है । अरविंद की अतिमानस और अतिमानव की धारणा एक ऐसी भव्य चेतना का परिणाम है, जो दर्शन और साहित्य, मनोविज्ञान और योग की धाराओं का समन्वय करती चलती है । अतिचेतना की ज्योति से अन्तर्मन को प्रकाशित करने का कार्य अरविन्द-दर्शन करता है ।[120]

उनकी साधना 'योग' नाम से प्रचलित है । वह योग जिसमें कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों को महत्ता दी गई है । ''कर्म-ज्ञान और भक्ति के इस संश्लेषण से भी यही शिक्षा निकलती है कि अरविंद भूत (द्रव्य), जीवन और मस्तिष्क, इन तीनों को दिव्य बनाकर इसी जीवन में दिव्य जीवन की अवतारणा करना चाहते थे ।[121]

रविन्द्रनाथ टैगोर :-

उन्नीसवीं स दी में होनेवाले सांस्कृतिक आंदोलन में टैगोर-परिवार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । रवीन्द्रनाथ टैगोर का कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है । यह कला उन्हें विरासत में मिली थी । पं. नेहरु ने लिखा है कि ''यद्यपि वे राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी उन्होंने अपने उच्चकोटि के काव्य तथा संगीत के द्वारा भारतीय जनता को स्वाधीनता प्राप्ति के लिए सदैव प्रेरित किया ।[122] उन्होंने स्वदेशी आंदोलन में भी सक्रिय भाग लिया था । सन् 1913 में गीतांजलि पर नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ

साथ में विश्व कवि होने का गोरव प्राप्त हुआ । ब्रिटिश सरकारने **'नाईट हुड'** की उपाधि से सम्मानित किया किन्तु जलियावाला हत्याकाण्ड से विचलित हो उठे और उन्होंने इस उपाधि को अस्वीकार किया। उन्होंने भारतीय कला और संस्कृति को महत्व देने के उद्देश्य से शान्तिनिकेतन की स्थापना की। अपने साहित्य एवं चिंतन से बंगाली और समस्त भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया । पूर्वी एवं पश्चिमी दोनों के आदर्शो में समानता स्थापित करने की कोशिश की । वे एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व के व्यक्ति थे किन्तु उनके पाँव सदैव भारतीय भूमि पर ही स्थित थे और उनका मस्तिष्क उपनिषदों के ज्ञान से सितित रहता था। पं.नेहरु ने लिखा है - 'भारत के मस्तिष्क, विशेषकर आगे आनेवाली पीढ़ी पर, उनका बड़ा ही प्रबल प्रभाव पड़ा ।[h23] टैगोर सामन्तवादी कलाकार होते हुए भी दलित और पीड़ित वर्ग से आत्मिक सहानुभूति रखते थे । इसीलिए वे प्रजातंत्रवादी हो गए थे । उन्होंने भारत की प्राचीन स्वस्थ सांस्कृतिक परंपरा का प्रतिनिधित्व किया है जो जीवन की संपूर्णता को लिए हुए है । इस तरह टैगोरने 'विश्वमानवतावाद' को प्रधानता दी है ।

महात्मा गांधी :-

जिस समय गांधीजी का आविर्भाव हुआ, उस समय देश को स्वाधीनता की जरुरत थी और उससे भी अधिक जरुरत मानव स्वभाव में परिवर्तन लाना था । महात्मा गांधी के विचारों से भारतवासी अधिक प्रभावित हुए थे । वे सभी मनुष्य को एक समान मानते थे। उनकी द्रष्टि में ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, का कोई भेदभाव नहीं था। गांधीजी ने भारतदेश को आज़ाद करने के लिए देश की जनता को सत्य और अहिंसा के मार्ग दिखाए और उसी पर उन्होंने अमल किया। अहिंसा को गँवाकर वे भारत को स्वाधीन करने के पक्षपाती नहीं थे । अर्थात पाशविक साधनों का सहारा लेकर आज़ाद हिन्द के पक्ष में नहीं थे । मानवोचित साधनों से ध्येय की प्राप्ति चाहते थे । गांधीजी का मुख्य उद्देश्य अपने देशवासियों के कष्टों का निवारण नहीं, प्रत्युत्त मनुष्य के पाश्वीकरण का अवरोध था । भारतवासी अच्छी तरह जानते थे कि आत्मबल शारीरिक बल से अधिक श्रेष्ठ है । गांधीजी ने भी अपने त्यागमय और वासनारहित जीवन में उपवास, तप तथा ब्रह्मचर्य को अधिक महत्व दिया । सर्वोदय की भावना द्वारा संसार में त्याग के आदर्श को संस्थापित करना चाहा और कहा कि सर्वधारणा की सेवा ही जीवन का महान लक्ष्य है । गांधीजीने भारतीय राजनीति के लिए **''सत्यमेव जयते''** और **''अहिंसा परमोधर्म''** ये दो महामंत्र दिए थे । आज जो हम भारत के स्वतंत्र नागरिक होने का गौरव प्राप्त करते है उसके पीछे गांधीजी के उच्च मानवीय आदर्श, सत्याग्रह, एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य का खुलकर विरोध किया और भारत देश को आज़ाद करवाया। पं. नेहरु ने लिखा है कि गांधीजी ताजी हवा के एक प्रबल झोंके की तरह आये जिसने हम लोगों को गहरी सांस लेने योग्य बनाना

।[127] गांधीजी की राजनीति छल-प्रपंच का पर्याय न होकर मनुष्य के धर्माचरण का ही एक रुप है । उनका उद्देश्य मानवीय धरातल को उन्नत बनाया और मनुष्यों के बीच स्वतंत्रता एवं बंधुत्व की भावना को उद्दीप्त करना था । दिनकरजी ने लिखा है जहाँ प्रेम है, सत्य वहीं निवास करता है तथा जहाँ प्रेम और सत्य रहते हैं, वहाँ क्रिया निश्चित रुप से अहिंसामयी हो जाती है। और इस अहिंसा में जो शक्ति छिपी है उसे गांधीजी की द्रष्टिने ही देखा । ''सच्ची अहिंसा भय नहीं, प्रेम से जन्म लेती है, निस्सहायता नहीं, सामर्थ्य से उत्पन्न होती है । जिस सहिष्णुता में क्रोध नहीं, द्वेष नहीं और न निस्सहायता का भाव है, उसके समक्ष बड़ी-से -बड़ी शक्तियों को भी झुकना ही पड़ेगा ।''[125] अहिंसा वास्तव में शक्तिशाली और वीर का गण है । गांधीजीने कहा है '' मेरी अहिंसा अत्यंत क्रियाशील शक्ति है । उसमें कायरता तो क्या, दुर्बलता के लिये भी स्थान नहीं है ।''[126] गांधीजी के नाम के साथ महात्मा की उपाधि पहले पहल रविन्द्रनाथ ने लगाई थी । गांधीजी के बारे में उन्होंने लिखा है कि ''गांधीजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो सुधार वे दूसरों को सिखाते हैं, उन सुधारों की कीमत पहले वे आप चुका देते हैं । गांधीजी में सभी महान गुण हैं, किन्तु उनका व्यक्तित्व उनके गुणों से भी अधिक महान है ।''[127]

तत्कालीन हिन्दी साहित्य भी गांधी-दर्शन और गांधी विचारधारा से अत्याधिक प्रभावित हुआ । आलोच्य कवि गुप्तजी के काव्य और जीवन पर भी इन सांस्कृतिक आंदोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा है । ''गांधीजी के स्वदेशप्रेम, स्वातंत्र्य-संघर्ष, जागरण-सुधार, सांप्रदायित एकता, धार्मिक औदार्य, पर-सेवा आदि सिद्धान्तो को मैथिलीबाबुने बड़े उत्साह के साथ ग्रहण किया है , परन्तु सत्य और अहिंसा के उन्होंने राम भक्ति के अनुरुप ढालकर ही स्वीकार किया है ।''[128] अर्थात गुप्तजीने अपनी रचनाओं में सत्य, अहिंसा, मानवता, एकता आदि को प्रधानता दी । कृषक वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं समानता रखनी चाहिए इसी बात को भी गुप्तजी भी मानते थे। गांधीजी की जैसे सर्वधर्म समन्वय में आस्था है, वैसे ही गुप्तजी भी रखते थे ।'' जहाँ गांधी-नीति और रामभक्ति में मौलिक भेद है वहाँ मैथिलीबाबुने गांधी-नीति को स्वीकार नहीं किया, जैसे की अवतारवाद आदि के सम्बन्ध में सिद्धान्ततः गांधी निर्गुण भक्तों की परम्परा में आते है । मैथिलीशरण ने सगुण और साकार उपासना को विधिवत और पूर्ण निष्ठा के साथ ग्रहण किया है ।

इस प्रकार अनेक धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलनों से भारतीय जनता में नवीन चेतना का संचार हुआ । जिसके फलस्वरुप, हिन्दू जनता सामाजिक कुरुढ़ियों के प्रति घृणा करने लगी । और अपनी जाति के उत्थान और विकास के लिए उसका आकर्षण बढ़ा । भारत वर्ष के राष्ट्रीय इतिहास में इन सांस्कृतिक आंदोलनो एवं उनके पुरस्कर्ताओं का अमूल्य योगदान है । इन्हीं के सत्प्रयासों के

फलस्वरुप लोक-जीवन में नयी चेतना का संचार हुआ देश नव-निर्माण की ओर अग्रसर होकर स्वाधीनता के स्वप्न देखने लगा।

साहित्यिक :-

बीसवीं शताब्दी में धार्मिक आंदोलनों ने जो संस्कार तैयार किए उन्हीं से ओतप्रोत इस युग के सामाजिक और राजनीतिक नेता रहे और उन्हीं से प्रभावित होकर साहित्य की सृष्टि भी हुई।[129] अर्थात् इन आंदोलनों से आधुनिक साहित्यकार भी बहुत दूर तक प्रभावित हुए है ।

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही खड़ी बोली काव्य भाषा के पद पर पूर्णतया आसीन हुई है। इसके पूर्व हिन्दी गद्य अपरिपक्व दशा में था । सन् 1837 इ. में सरकारी कार्यालयों की भाषा उर्दू हो गई जो पहले फारसी थी । भारतेन्दू के पूर्व हिन्दी भाषा किसी भी रुप में प्रतिष्ठित नहीं थी । सदा सुखलाल, ईशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल आदि की भाषा भी ब्रजमिश्रित थी। सदल मिश्र की भाषा पूर्वीपन और पुरानापन से मिश्रित थी । देवीप्रसाद और देवकीनंदन खत्री की सच्ची हिन्दुस्तानी भी किसी को पसंद नहीं आई। राजा लक्ष्मणसिंहने विशुद्ध हिन्दी को अपनाया । लेकिन वह भाषा भी संस्कृत मिश्रित होने के कारण कृत्रिम और त्रुटिपूर्ण सिद्ध हुई ।

जब हिन्दी साहित्यकार किसी सरल, सुंदर और सहज भाषाकी इच्छा कर रहे थे, तब भारतेन्दु हरिशचन्द्रने पर्दापण किया । खड़ी बोली व्यवहार और ग्रंथो में प्रयुक्त होती थी लेकिन उसका स्वरुप निश्चित नहीं था । भारतेन्दूजी ने छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया और गद्य का बहुत सरल रुप रखा । उन्हों भाषा के लिए संग्राम किया ।

भारतेन्दूजी के साथ-साथ दयानंद सरस्वती, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमधनी आदि ने भी भाषा निर्माण में अपना सहयोग दिया । उन्होंने हिन्दी को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक प्रयत्न किये ।

19 वीं सदी के गद्य का मूल्यांकन उस युग और इतिहास की दृष्टि से है । वस्तुतः इन बातों के होते हुए भी भारतेन्द्र युगने खड़ी बोली में पर्याप्त उच्च कोटि की रचना नहीं की । उस युग की अशुद्ध और शंकर खड़ी बोली प्रांजल, परिष्कृत और परिमार्जित न हो सकी ।[130] पद्य के लिए ब्रजभाषा ही आयुक्त समझी जाती थी लेकिन गद्य में भी ब्रज और अवधि की प्रधानता है । ''यद्यपि बंगला के प्रभाव से हिन्दी में कोमलता और अभिव्यंजना शक्ति आ रही थी और अंग्रेजी के प्रभाव से विराम आदि चिन्हों का प्रयोग होने लगा था तथापि यह सब शून्यवत था । इन सबके अतिरिक्त तत्कालीन लेखकों ने व्याकरण संबंधी दोषों के सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसके रुप में सर्वत्र अस्थिरता और

असंयतता बनी रही । ''[131] 'इनने ', 'उनने', 'इन्हें', 'उन्हें', 'मुझे', 'सक्की', 'जिस्में' आदि शब्दों की प्रधानता रही । भारतेन्दू और प्रतापनारायण मिश्र के बाद के लेखकों का ध्यान भाषा की शुद्धता या शैली की शुद्धता की ओर न गया । हिन्दी भाषा और साहित्य में अराजकता फैल गई। उस समय हिन्दी को अनिवार्य अपेक्षा थी एक ऐसे प्रभविष्णु सेनानी की जो उस अवस्था में व्यवस्था स्थापित करते भ्रांत और अनजान लेखकों का पथ प्रदर्शन कर सकें।''[132] भारतेन्दूजी की मृत्यु के बाद खड़ी बोली में पद्यरचना करने का कार्य बड़ा मुश्किल था । कोई महान व्यक्ति ही ऐसा साहस कर सकता था । श्रीधर पाठक ने देखा कि सन् 1885 के आसपास हिन्दी गद्य लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है । इतना ही नहीं, लोकमानस का झुकाव भी गद्य की और था। भिन्न भाषाओं की पाठ्यपुस्तकें, अखबारों की रिपार्ट और जनजीवन की अन्य भाषा आधारित सूचनाएँ भी हिन्दी गद्य में ही जनता के लिए उपयोगी बन सकती है । लेकिन वे भी इस बात से परेशान थे । ब्रजभाषी अंचलों से छपनेवाले ग्रंथ बिहार-बंगाल-उड़ीसा तक में पठनीय हो सकते थे । लेकिन हिन्दी पद्य पठनीय नहीं थे । केवल ब्रजभाषा के पद्य उत्तर भारत के एक क्षेत्र में समझे जाते थे । बिहार और अन्य भाषा के क्षेत्रों में ब्रजभाषा दुरुह मानी जाती थी । इन क्षेत्रों के विद्यार्थी ब्रज की कविता समझने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करते थे । ''साहित्य या विद्या से अलग क्षेत्रों में ब्रज के पद्य काला अक्षर भैंस बराबर ही थे ।''[133] इस प्रकार गद्य और पद्य की भाषा विषयक समस्या बड़ी विषम थी । श्रीधर पाठकजी बिहार के थे । उन्होंने ब्रज का विरोध किया जो स्वाभाविक भी था । उन्होंने सन् 1886 के 16 दिसम्बर के ''बिहारबन्धु'' नामक पत्र के अंक में हिन्दी पद्यों की शोचनीय अवस्था पर एक लेख भी लिखा । सन् 1886 इ. में उनकी ''एकांतवासी योगी'' नामक रचना प्रकाशित हुई। जिसमें खड़ी बोली काव्य को प्रमाणित ठहराने का प्रयास किया गया । अयोध्या प्रसाद खत्री ने जिस खड़ीबोली को इतना महत्व दिया है उसमें श्रीधर पाठक का कम महत्व नहीं है । सन् 1887 ई. में खत्रीजी ने ''खड़ी बोली का पद्य'' को प्रकाशित करवाया । उन्होंने लिखा - ''खड़ी बोली के व्याकरण में ब्रजभाषा छंद को जगह देना और ब्रजभाषा शब्दों को हिन्दी में ''पोयटिकल लाइसेंस'' समझना हिन्दी व्याकरण की मेरी समझ में भूल है ।''[134] इस प्रकार वे मानते थे कि ब्रजभाषा की कविता हिन्दी भाषा की कविता नहीं मानी जा सकती । श्रीधर पाठक और अयोध्याप्रसाद खत्री के प्रबल विरोधी राधाचरण गोस्वामी थे । वे अपने को ''खड़ी बोली का विरोधी'' कहते थे । गोस्वामीजी के तर्को का उत्तर देते हुए श्रीधर पाठकने सन् 1887 के 20 दिसम्बर वाले ''हिन्दूसातन'' के अंक में कहा कि '' यह (खड़ीबोली गद्य) अन्तर्प्रांतीय व्यवहार की भाषा है और योरोपियन इसे यहाँ की फ्रेंच जबान (लिंगुआ फ्रेंका) करके समझते हैं । यह आव श्यक नहीं है कि जिन छंदो का ब्रजभाषा पद्य में व्यवहार किया जाता है, उन्हीं का केवल हिन्दी में व्यवहार किया गया ।

धनाक्षरी, सवैया आदि के अलावा अनेक ऐसे छंद है, जिनका प्रयोग खड़ी बोली कविता में बड़ी सुंदरता से हो सकता है और यदि आवश्यकता पड़ी तो वे छंद खड़ी बोली में प्रस्तुत भी किए जायेंगे ।''[135] यह कार्य पाठकजी ने किया । पाठकजी ने प्रतापनारायण मिश्र को 8 मार्च सन् 1888 के ''हिन्दूस्तान'' में उत्तर देते हुए खड़ी बोली के लिए किया है कि - '' अभी वह वयः संधि में ही है ।[136] श्रीधर पाठक को पंचम हिन्दी साहित्य संमेलन का सभापति बनाया गया ।

भारतेन्दूजी की मृत्यु के बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी का आगमन हुआ । 'कविता के क्षेत्र में वे विषय, भाव, भाषा, शैली और छंद की नवीनता लेकर आए । हिन्दी के उच्छृंखल निबंध को निबन्धता, एकतानवादी और पद्य निबंधो की अभिनव परंपरा को आगे बढाया ।''[137] उन्होंने आधुनिक समालोचना शैली का सूत्रपात किया । ''सम्पत्ति शास्त्र'', ''शिक्षा'', ''स्वाधीनता'' आदि विषयों की मौलिक और अनुदित पुस्तकें भी प्रकाशित हुई । विदेशी सभ्यता के कारण भारतीय प्रजा हीनता का अनुभव कर रही थी । उनके हृदय में आत्माभिमान का भाव पैदा करने वाले द्विवेदीजी ही है ।

काशी नगरी प्रचारिणी सभा प्रयाग के अनुमोदन से सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' का प्रकाशन आरंभ हुआ । प्रथम बारह संख्याओं में संपादकों के अतिरिक्त अन्य दस लेखक ''सरस्वती'' में लिखते थे । वह पत्रिका बहुत सीमित थी । उसमें सोलह से इक्कीस पन्ने ही रहते थे । सन् 1901 ई. में श्यामसुंदरहास इस पत्रिका के संपादक थे । सन् 1902 से ''सरस्वती'' में द्विवेदीजी के लेख प्रकाशित होने लगे । ''सन् 1902 ई. के अंत में श्यामसुंदरहास ने भी संपादन करने में असमर्थता प्रकट की । उन्होंने संमति दी, बाबू चिन्तामणि घोष ने प्रस्ताव किया और पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का संपादन स्वीकार कर लिया ।''[138]

उन्होंने ''सरस्वती'' के उद्देश्यों की दृढ़ता के साथ रक्षा की । अपने करुण स्वामियों को कभी भी उलझन में न डाला । उनकी 'सरस्वती' सेवा क्रमशः फूलती फलती गई । उनकी कर्तव्यनिष्ठा और न्याय परायणता के कारण प्रकाशकों ने उन्हें सर्वदा अपना विश्वास पात्र माना ।''[139] द्विवेदीजी हिन्दी भाषियों की मानसिक भूमिका का विकास करना, संस्कृत साहित्य का पुनरुत्थान खड़ीबोली कविता का उन्नयन, नवीन पश्चिमीय शैली की सहायता से भावाभिव्यंजन, संसार की वर्तमान प्रगति का परिचय और साथ ही प्राचीन भारत के गौरव की रक्षा करना चाहते थे । उन्होने हिन्दी पाठकों की असंस्कृत रुचि का परिष्कार किया । ''वस्तुतः उनके सम्पादक जीवन की समस्त साधना ''सरस्ती'' पाठकों के ही कल्याण के लिए थी । विविध विषयक उपयोगी और रोचक लेखों, आख्यायिकाओं, कविताओं, श्लोकों, चित्रों, व्यंग-चित्रों, टिप्पणियाँ आदि के द्वारा जनता के चित्त को ''सरस्वती'' के

पठन में रमाया ।[140] इसीलिए सन् 1903 से सन् 1925 तक के काल को ''द्विवेदी युग'' कहा गया है । क्योंकि उस युग की गद्यात्मक और पद्यात्मक रचना द्विवेदीजी की शैली के आधार पर लिखी गई है । इस युग के उत्तरार्द्ध में मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य क्षेत्र में आगमन हुआ।

''गद्य और पद्य की भाषा एक करने पर भी द्विवेदीजी ने विशेष जोर दिया ।''[141] भारतेन्दूजी 'पद्य के लिए ब्रजभाषा ही उपयुक्त समझते हैं, पर संभवतः वे दूर दृष्टि से यह समझ सके थे कि जो भाषा आज हमारे काम-काज और साहित्य के विशेष अंग की भाषा बनती चली जा रही है, यह कैसे संभव है कि उसमें कभी कविता की रचना करने का प्रश्न न उठे ।''[142] फिर भी भारतेन्दूजी ने खड़ी बोली में काव्य रचा नहीं की । इसका कारण यह भी हो सकता है कि खड़ीबोली में ब्रजभाषा सी मिठास नहीं है । दूसरा कारण वह भी हो सकता है कि उनमें वैष्णव-भावना थी और वे अपनी वैष्णव भावना को खड़ी बोली व्यक्त न कर पाए हो । इसीलिए उन्होंने यह माना होगा कि ''गद्य'' के लिए खड़ीबोली और ''पद्य'' के लिए ''ब्रज'' ही उपर्युक्त भाषा है ।

प्राकृत और अपभ्रंस के बाद हिन्दी भाषा का उद्‌भव हुआ। ''मध्यमाल के पहले भाग में हिन्दी की पुरानी बोलियों ने विकसित होकर ब्रज, अवधी और खड़ीबोली का रुप धारण किया ।''[143] इनमें ब्रज और अवधी में विपुल मात्रा में काव्य लिखे गए लेकिन खड़ी बोली उपेक्षित हो रही । इसीलिए खड़ी बोली की उत्तपत्ति के बारे में भी मतभेद प्रचलित है । विद्वान लोग मानते है कि खड़ीबोली नवा विष्कृत भाषा है । इस भाषा के बारे में दूसरा मत यह प्रचलित है कि उर्दू के फारसी-अरबी के शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों को रककर इस भाषा का निर्माण किया गया है। लेकिन ये केवल भ्रम ही है। इनके विरुद्ध सबसे बड़ा तर्क यह है कि रामप्रसाद निरंजनी, इशाअल्लाखाँ, सदल मिश्र, लल्लूलाल तथा सदा सुखलाल की रचनाओं में उपलब्ध भाषागत प्रौढ़ि और वाक्यगत विन्यास किसी नव-निर्मित भाषा में नहीं आ सकते ।''[144] 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ तक ब्रजभाषा की एक मात्र भाषा होने के कारण अनेक भांतियाँ उपस्थित हुई । इससे स्पष्ट है कि 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ तक खड़ी बोली एक कोने में पड़ी रही । वैसे तो खड़ी बोली का आभास अपभ्रंशकाल से ही मिलता है। लेकिन खड़ीबोली काव्यभाषा के रुप में आधुनिक काल से ही व्यवहृत हुई है । पंडित रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि - ''किसी भाषा का साहित्य में व्यवहार न होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि उस भाषा का अस्तित्व नही था ।''[145]

12 वीं और 13 वीं शताब्दियों की अपभ्रंश में लिखी गई काव्य कृतियों में भी खड़ीबोली के लक्षण मिलते है । उस समय की रचनाओं में 'आ'' कार की प्रधानता रही है । अपभ्रंश के बाद रासो ग्रंथ मिलते हैं । रासो ग्रंथ में भी खड़ी बोली की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है । 14 वीं शताब्दी में खड़ी

बोली का काफी परिमार्जित रुप मिलता है। रहीम, भूषण, सूदन, तोष आदि की रचनाओं में भी खड़ी बोली के अनेक उदाहरण मिलते है । अकबर के समकालीन कवि गंग की रचना खड़ीबोली में लिखी गई है । रामप्रसाद निरंजनी की योगवासिष्ठ स्वच्छ खड़ीबोली में लिखी गई रचना है । मध्यकाल में खड़ी बोली का रुप प्रचलित था फिर भी साहित्य के क्षेत्र में उसे स्थान नहीं मिल पाया था । आधुनिककाल में भी खड़ीबोली का प्रयोग गद्य में ही होता था और पद्य में ब्रजभाषा का । भारतेन्दू हरिश्चन्द्र के बाद खड़ीबोली का आंदोलन चला । इस आंदोलन के पहले वह गद्य की भाषा थी । लेकिन अब खड़ी बोली में पद्य भी लिखाजाने लगा। 20 वीं शताब्दी के आरंभ से ही ब्रज का स्थान खड़ीबोली ने ले लिया। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ही खड़ीबोली को पद्य की भाषा के रुप में पूर्ण प्रतिष्ठित किया। ''द्विवेदीजी का गौरव इस बात में है कि उनके आदर्श, उपदेश और सुधार के परिणामस्वरुप ही हिन्दी संसार ने गद्य की भाषा को ही पद्य की भाषा स्वीकार कर लिया।''(146)

अध्यापक पूर्णसिंह पूर्ण, कामताप्रसाद गुरु, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्दवल्लभ पंत, रामचरित उपाध्याय, गणेशशंकर विद्यार्थ आदि खड़ीबोली के प्रारंभिक लेखक है । इसके बाद सन् 1905 में गुप्तजी ने ''हेमंत'' नामक रचना लिखी जो ''सरस्वती'' में छपी। द्विवेदीजी की ''कुमार संभव सार'' का प्रकाशन सन् 1920 ई. में हुआ ।''कुमार संभव सार'' खड़ीबोली में लिखी गई रचना है । इस रचना से गुप्तजी अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने भी खड़ीबोली में रचनाएँ लिखी। बाद में एक सारा वर्ग उनके आदर्शो पर चलने लगा । ''इस वर्ग में मैथिलीशरण गुप्त सबसे आगे थे । लगभग बीस वर्ष तक कविता-संबंधी द्विवेदीजी के विचारों ने हिन्दी जगत् पर एकच्छत्र राज किया । इसी से यह पहले वीस वर्ष ''द्विवेदी युग'' कहलाए ।''(147)

श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली में काव्य रचनाएँ की। उन्होंने अंग्रेजी से अनुवाद किये और प्रकृति और देशभक्ति संबंध अनेक रचनाएँ खड़ीबोली में लिखीं अर्थात खड़ीबोली कविता के उन्नायक श्रीधर पाठक है । उनके बाद पंडित म.प्रसाद द्विवेदी आये । उन्होंने संस्कृत और मराठी काव्य का आधार लिया था। जिससे भाषा रससिक्त होती गई । पंडित द्विवेदीज के आगमन से लोगों की दृष्टि संस्कृत की ओर भी गई । खड़ी बोली में जो ब्राज और अवधी का मिश्रण था उसको दूर कर दिया । ''सरस्वती'न पत्रिका के द्वारा अनेक पद्यकारों को भी जन्म दिया । इनमें मैथिलीशरण गुप्त, माधव शुक्ल, रामचरित उपाध्याय, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, पंडित गवा प्रसाद शुक्ल ''सनेही'' और पंडित रामनारायण पांडेय प्रमुख कवि है । इन कवियों की रचनाएँ द्विवेदी युग का प्रतिनिधित्व कती है । पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की कविताओं में खड़ीबोली का रुप मिल नहीं पाता है । उन्होंने तो कवियों को

आदेश ही दिया है। उनको सबसे अधिक सफलता गुप्तजी को चुन लेने में तथा उनको प्रोत्साहित करने में।''[148]

सन् 1910 ई. में गुप्तजी का सर्वप्रथम ऐतिहासिक खण्ड काव्य ''रंग में भंग'' प्रकाशित हुआ, जो खड़ीबोली में लिखा गया है। इसके बाद ''जयद्रथ-वध'' प्रकाशित हुआ । इस रचना के बाद ब्रजभाषा के पक्षपातीओंने कहा कि - उने ''जयद्रथ-वध'' ने ब्रजबाषा के मोह का वध कर दिया और ''भारत-भारती'' में तो जैसे सुनिश्चित भारतीय भाषा का सतेज रुप ही खड़ा हो गया ।''[149]

डा. सुधीन्द्र लिखते हैं कि – ''उनकी (गुप्तजी की) लेखनी से ''जयद्रथ-वध'' और ''भारत-भारती'' की सृष्टि हुई तो वर्षो तक इन दोनों काव्यों की ही भाषा का सौष्ठव अनुकरणीय हो गया । उसमें खड़ीबोली की जो गरिमा, जो सुषमा प्रस्तुत हुई वह एक मानदण्ड बन गई ।[150] इन दो काव्यों के प्रकाशन से यह सिद्ध हुआ कि खड़ीबोली में बी काव्य रचा हो सकती है । इन दो काव्यों के प्रकाशन से खड़ीबोली की काव्योपयुक्तता सिद्ध हुई ।

प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी तथा अन्य कवियों ने भी खड़ी बोली में काव्य रचनाएँ लिखकर उसके विकास में अपूर्व योगदान दिया है । ''इन कलाकारों की अपनी शक्तियों से इन्कार नहीं किया जा सकता , फिर भी यदि मैथिलीशरण गुप्तजी का योग न होता तो खड़ी बोली का इतना संस्कार एवं वैभव विकास शायद अभी तक न हुआ होता । इस प्रकार खड़ीबोली के विकास में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है ।[151] उनके बारे में शांति प्रिय द्विवेदी ने लिखा है - ''किसी माला में प्रथम मणि, उपवन में प्रथम पुष्प, गगन में प्रथम नक्षत्र का जो महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है वही वर्तमान हिन्दी कविता में गुप्तजी का है । सन् 1921 ई. में द्विवेदीज ने 'सरस्वती'' से अवकाश ग्रहण किया। तब तक गुप्तजी हिन्दी साहित्य को पन्द्रह ग्रंथो की अमूल्य भेंट दे चुके थे ।

सन् 1915 ई. में गांधीजी अफ्रीका से लौटकर भारत आये । उनका आगमन होते ही भारत में गांधीयुग का आरंभ हुआ । गांधीजी का विचारधारा से प्रभावित होकर गुप्तजी ने ''साकेत'' और ''पंचवटी'' की रचना की । सन् 1932 में ''साकेत'', सन् 1933 में ''यशोधर'', सन् 1934 में ''मंगलघाट'', सन् 1935 में ''द्वापर'', ''सिद्धराज'' का प्रकाशन हुआ। इसके बाद ''नहुष'', अंजलि और अर्ध्य काबा और कर्बला, विश्व-वेदना, विष्णुप्रिया आदि रचनाएँ लिखी गई । इसके अतिरिक्त गुप्तजीने बंगला भाषा से ''विरहिणी ब्रजांगना'', ''पलासी का युद्ध'' ''वीरांगना, 'मेघनाद वध' आदि काव्यों का अनुवाद किया ।

डा. रामकुमार वर्मा को गुप्तजी के काव्य से प्रेरणा मिली है, वर्माजी की ''हमीर हठ'' गुप्तजी की ''मीर हमीर'' से प्रभावित हुई है। वे लिखते हैं - चूँकि मैंने उस काव्य में गीतिका-छंद का प्रयोग किया था, जो मैंने 'जयद्रथ-वध' में पढ़ा था । इस प्रकार यदि कहा जाय कि मेरे काव्य जीवन में आदि प्रेरणा देनेवाले श्री मैथिलीशरण गुप्त ही थे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी[152] श्री जैनेन्द्रकुमार ''साधना के कवि '' नामक अपने लेख में लिखते है ''शायद तीसरी क्लास में था, तब मैथिलीशरण गुप्त का नाम मैंने सुना । सोचता हूँ कि तब मैं क्या जानने योग्य रहा हूँगा । अक्षर पढ़ना कम जानता हूँगा, पर जिस शाला में मैं ता, उसके छोटे-बड़े, जाने-अनजाने सब बालकों के सिर उन दिनों मैथिलीशरण और उनके पद्य ऐसे चढ़ गये थे कि हरेक यह दिखाना चाहता था कि उसको अधिक पद्य याद हैं । मेरे कंठ भी तब कई पद्य बैठ गए थे । मतलब तो उनका पूरा हम क्या समझते होंगे, फिर भी धरोहर की भाँति सेंतकर उन पद्यों को हम अपनी स्मृति में रखे रहना चाहते थे। और ढ़िढाई देखिए, अनुकरण में वैसी कुछ पद्य रचना भी खुद किया करते थे ।''[153] श्रीमति म.वर्माने अपने निबंध 'रेखाएँ' में लिखा है कि उन्होंने प्रारंभिक तुकबन्दी गुप्तजी के छंद के आधार पर ही शुरु की थी ।

उपरोक्त साहित्यिक परिस्थितियों के मध्य ही गुप्तजी ने हिन्दी काव्य जगत में प्रवेश किया था । और अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के द्वारा अनेक अमूल्य कृतियों से माँ भारती के भण्डार की श्रीवृद्धि की। अनेक कवियों और लेखकों को उनसे सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई है । संक्षेप में द्विवेदीयुग में गुप्तजी का साहित्य ही अधिक मूल्यवान और पठनीय है ।

---

(1) गांधी विचारधारा का हीन्दी साहित्य पर प्रभाव : डा. अरविंद जोशी

(2) गांधी विचारधारा (माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिस्टन, जे. (एस.काटन, पृ. 185)

(3) काँग्रेस का इतिहास : डा.बी.पट्टाभि सीतारामय्या) पृ.5

(4) काँग्रेस का इतिहास : डा.बी.पट्टाभि सीतारामय्या) पृ.5

(5) गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डा. अरविंद जोशी, पृ. 24

(6) आ. सामाजिक आंदोलन और आ. हिन्दी साहित्य : राग बिहारी मिश्र, पृ.52

(7) कँाग्रेस का सरल इतिहास : राजबहादूर सिंह, पृ. 8

(8) साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन : द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ. 37

(9) आधुनिक भारतः आचार्य जाबड़ेकर, पृ. 86

(10) कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभि सीतारामैया, पृ. 51

(11) आधुनिक भारत : आचार्य जाबड़ेकर, पृ. 81

(12) हिन्दी कविता में युगान्तर : डा. सुधीन्द्र, पृ. 13

(13) संक्षिप्त कँाग्रेस का इतिहास : पट् टाभि सितारा मैया, पृष्ठ - 48

(14) गत दो दशकों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना : नरेन्द्रनाथ चर्तुवेदी, पृ. 13

(15) हिन्दी कविता में युगान्तर : डा. सुधीन्द्र, पृ. 16

(16) गत दो दशकों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना : नरेन्द्रनाथ चर्तुवेदी, पृ. 14

(17) आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आ. हिन्दी साहित्य - राग बिहारी मिश्र, पृ. 74

(18) हिन्दी कविता में युगान्तर : डा. सुधीन्द्र, पृ. 21

(19) हिन्दी कविता में युगान्तर : डा. सुधीन्द्र, पृ. 22

(20) संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभि सीतारामैया, पृ. 94

(21) भारतीय नवजागरण का इतिहास : बाबूराव जोशी, पृ. 125

(22) राष्ट्रीयता और समाजवाद : आचार्य नरेन्द्र देव, पृ. 312

(23) भारतीय नवजागरण का इतिहास : बाबूराव जोशी, पृ. 137

(24) भारतीय नवजागरण का इतिहास : बाबूराव जोशी, पृ. 148

(25) भारतीय नवजागरण का इतिहास : बाबूराव जोशी, पृ. 157

(26) गत दो दशकों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना : नरेन्द्रनाथ चर्तुवेदी, पृ. 17

(27) संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभि सीतारामैया, पृ. 552

(28) संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभि सीतारामैया, पृ. 569

(29) गत दो दशकों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना : नरेन्द्रनाथ चर्तुवेदी, पृ. 19

(30) आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - राग बिहारी मिश्र, पृ. 225

(31) मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा. कमलाकान्त पाठक, पृ. 94

(32) मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा. कमलाकान्त पाठक, पृ. 100

(33) मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा. कमलाकान्त पाठक, पृ. 101

(34) मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा. कमलाकान्त पाठक, पृ. 98

(35) स्वदेश संगीत, पृ. 113

(36) कृष्ण कथा, सरस्वती जुलाई, सितम्बर, 1915 - मै. मैथिली

(37) गणेशजी, कवि का संस्सरणात्मक निबंध, सुधा, नवम्बर -1931-
मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य - पृ. 434 से 438 पृ. 98 से उद्धत

(38) राष्ट्रकवि मै. गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ - स्वतंत्र कुल युग्म का निर्माण : श्री ऋषि जैमिनी कौशिक ''बहुआ'' - पृ. 321

(39) राष्ट्रकवि मै. गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ - स्वतंत्र कुल युग्म का निर्माण : श्री ऋषि जैमिनी कौशिक ''बहुआ'' - पृ. 323

(42) राष्ट्रकवि मै. गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ - स्वतंत्र कुल युग्म का निर्माण : श्री ऋषि जैमिनी कौशिक ''बहुआ'' - पृ. 323

(43) काँग्रेस का इतिहास : डा.बी.पट्टाभि सीतारामय्या) पृ.314

(45) मैथिली काव्यमान ग्रंथ की कलाभवन काशी में संग्रहीत हस्तलिखित सामग्री से - मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य : डा. कमलाकान्त पाठक, पृ. 48 से उद्धत

(46) आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 80

(47) आधुनिक हिन्दी काव्य में नारीभावना - शैल कुमारी, पृ. 41

(48) भारत का सांस्कृतिक इतिहास : श्री. शिव शेखर मिश्र, पृ. 276

(49) आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 165

(50) भारतीय राजनीति : श्री रामगोपाल, पृ. 319

(51) आधुनिक साहित्य आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 167

(52) आधुनिक साहित्य आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 168

(53) Discovery of India : P. Nehru, p. 330

(54) हिन्दी कविता में युगान्तर : डा. सुधीन्द्र पृ. 5

(55) राष्ट्रकवि मैं. गुप्त अ. ग्रंथ : भारतीय पुनरुत्थान के कविश्री मै. गुप्त : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 971

(56) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 444

(57) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 442 (एच. सी. ई. जकारिया - Renascent India)

(58) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 445

(59) साकेत में काव्य - संस्कृति और दर्शन : डा. द्वारिकीप्रसाद सक्सेना. पृ. 33

(60) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 447

(61) हिन्दी कविता में युगान्तर : डा. सुधीन्द्र पृ. 6

(62) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 451

(63) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 451

(64) पंत का काव्य : डा. प्रेमलता बाफना, पृ. 67

(65) आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास भाग 2 : सरकार तपादत्त, पृ. 500

(66) An Advance History of India- R.C. Majumdar, p. 878

(67) "The Brahmo-Samaj inaugrated a new era for the Indian people by proclaiming the principles of individual freedom, national unity, solidarity and collaboration and democratization of all social institutions and social relations, It was the first organised expression of their national awakening."

[Social Background of Indian Nationalism : A.R.D. p. 285]

(68) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 457

(69) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 457

(70) An Advance History of India : R.C. Majumdar, p. 881

"The last and in many ways the most enduring aspect of the new reformation in India has its rise in Bombay presidency and is linked most closely with the name of Justice J. Ranade."

(71) An Advance History of India : R.C. Majumdar, p. 882

"The true reformer has not to write on a clean slate. His work is more often to complete the half written sentence."

(72) पंत का काव्य : डा. प्रेमलता बाफना, पृ. 70

(73) रिनासाँ आव् हिन्दुइझम, संसक : दिनकर, पृ. 461

(74) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 463

(75) हिन्दी कविता में युगान्तर : डा. सुधीन्द्र, पृ. 7

(76) Life of Ramkrishna : Roma-Rolla, p. 47

"It is a historical fact that when Dayanand's mind was in process of being farmed. The highest religious spirit of Europe threatened to extinguish its feeble flame without the satisfaction of substituting its own."

(77) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 463

(78) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 464

(79) पंत का काव्य : डा. प्रेमलता बाफना, पृ. 75

(80) आदुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्त्रोत : डा. केसरीनारायण शुक्ल पृ. 35

(81) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 471

(82) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 473

(83) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 473

(84) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 474

(85) हिन्दुत्व : रामदास गोड़, पृ. 751

(86) पंत का काव्य : डा. प्रेमलता बाफना, पृ. 73

(87) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 476

(88) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 477

(89) An Advance History of India : R.C. Majumdar, p. 886

"This has brought with it a new self-respect a pride in the past, a belief in the future, as an inevitable result, a great wave of patriotic life the beginning of the rebuilding of a nation."

(90) हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास : डा. भगीरथ मिश्र, पृ. 130

(91) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 483-484

(92) पंत का काव्य : डा. प्रेमलता बाफना, पृ. 78

(93) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 491

(94) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 491

(95) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 492

(96) Discovery of India : Pt. Nehru, p.356

"His personality impressed itself on all who saw him and many who never saw him have been influenced the story of his life."

(97) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 493

(98) विविध प्रसंग : स्वामी विवेकानंद, (दो शब्द), पृ. 1

(99) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 499

(|100) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 499

(|101)| Discovery of India : Pt. Nehru, p.356

"He came as a tonic to the depressed and demoralized Hindu mind and gave itself - reliance and some roots in the past."

(|102)| स्वाधीन भारत : जय हो : स्वामी विवेकानंद, पृ. 1

(|103)| स्वाधीन भारत : जय हो : स्वामी विवेकानंद, पृ. 5

(|104)| Discovery of India _ Pt. Nehr, p. 357

"Our religion is in the kitchen, our God is the cooking and our religion, 'don't touch me, I am holy."

(|105)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 500

(|106) |Discovery of India : Pt. Nehru, p.357

"Liberty of thought, and action is the only condition of life, of growth and well being where it does not exist, the man, the race the nation must go."

(|107)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 503

(|108)| पंत का काव्य : डा. प्रेमलता बाफना, पृ. 81

(|109)| स्वाधीन भारत : जय हो : स्वामी विवेकानंद, पृ. 82

(|110) Discovery of India : Pt. Nehru, p.357

"He wanted to combine western progress with India's spiritual background. Make a European society with India's religion."

(|111)| Discovery of India : Pt. Nehru, p.358

"It there is a sin in the world, it is weakness, avoid all weakness, weakness is sin, weakness is death."

(|112) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 497

(|113) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 497

(|114) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 497

(|115) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 511

(|116) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 511

(|117) गीता रहस्य :तिलक, प्रस्तावना, पृ. 24

(|118) पंत का काव्य : डा. प्रेमलता बाफना, पृ. 85

(|119) संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 520

(|120)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 521

(|121)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 522

(|122)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 526

(|123)| पंत का काव्य : डा. प्रेमलता बाफना, पृ. 85

(|124)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 527

(|125)| Discovery of India : Pt. Nehru, p.361

"He was no politician, but he was too sensitive and devoted to the freedom of the Indain people to remain always in his ivory tower of poetry and song."

(|126)| Discovery of India : Pt. Nehru, p.360

"His influence over the mind of India, and specilly of successsive rising generations has been tremendous."

(|127)| Discovery of India : Pt. Nehru, p.379

(|128)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 536

(|129)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 537

(|130)| संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 541

(|131)| आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृतियाँ : डा. नगेन्द्र, पृ. 49

(|132)| हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास : भगीरथ मिश्र, पृ. 129

(|133)| महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ. 32

(|134)| महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ. 33

(|135)| महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ. 33

(|136)| राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ-इकहत्तर वर्षो की अ. गाथा : श्री. ऋषि जैमिनी कौशिक ''बहुआ'', पृ. 276

(|137)| राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ-इकहत्तर वर्षो की अ. गाथा : श्री. ऋषि जैमिनी कौशिक ''बहुआ'', पृ. 276

(|138)| राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ-इकहत्तर वर्षो की अ. गाथा : श्री. ऋषि जैमिनी कौशिक ''बहुआ'', पृ. 276

(|139)| राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ-इकहत्तर वर्षो की अ. गाथा : श्री. ऋषि जैमिनी कौशिक ''बहुआ'', पृ. 277

(|140)| महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ. 33

(|141)| महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ. 162

(|142)| महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ. 163 से उद्धत 'साहित्य-संदेश' - अप्रेल, 1939 ई. में प्रकाशित आत्मनिवेदन के आधार पर ।

(|143)| महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ. 163-164

(|144)| रसज्ञ रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ. 7-8

(|145)| गुप्तजी की कला : डा. सत्येन्द्र, पृ. 3

(|146)| हिन्दी भाषा : श्याम सुंदरदास, पृ. 43-44

(|147)| मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता : उमाकान्त, पृ. 284

(|148)| हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 408-409

(|149)| महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ. 291

(|150)| गुप्तजी की कला : डा. सत्येन्द्र, पृ. 4

(|151)| गुप्तजी की कला : डा. सत्येन्द्र, पृ. 4

(|152)| गुप्तजी की कला : डा. सत्येन्द्र, पृ. 7

(|153)| हिन्दी कविता में युगान्तर : डा. सुधीन्द्र, पृ. 404

(|154)| मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता : उमाकान्त, पृ. 317

(155) हिन्दी काव्य के विकास के मार्ग निर्देशक : श्री रामकुमार वर्मा, पृ. 30

(156) ये और वे : जैनेन्द्रकुमार, पृ. 72